www.thearyasamaj.org

ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अक्टूबर २०१३

वर्ष ४२ : अङ्क १२
दयानन्दाब्द : १९०
विक्रम-संवत् : आश्विन-कार्तिक २०७०
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११४

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक व प्रबन्ध सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सम्पादक : डॉ. अशोक कुमार
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता
कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक के लेख

- आर्यसमाज की दृष्टि में.... २
- वेदोपदेश ३
- धर्म आत्मोद्धार का साधन है ६
- हमने क्या खोजा....७ ९
- राजा का धर्म १५
- माँ कौशल्या! तुझे प्रणाम १७
- श्राद्ध और तर्पण... १८
- मानव की वरणीय..... २२
- वर्तमान युग में ईश्वरीय... २४

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

www.thearyasamaj.org

आर्यसमाज की दृष्टि में कृष्ण : योगेश्वर कृष्ण का पावन स्मरण

(डॉ. भवानीलाल भारतीय)

किसी महापुरुष के बारे में उसके समकालीनों की सम्मति परवर्ती लोगों के कथन से अधिक महत्व रखती है। इस नियम से हम यह देखें कि महाभारतकालीन, कृष्ण के समकालीन लोगों की इस महापुरुष के बारे में क्या धारणा थी? सर्वप्रथम महाभारत के प्रणेता वेद व्यास ने उनके बारे में कहा कि जहां धर्म है, वहां कृष्ण हैं और जहां कृष्ण हैं वहां निश्चित विजय है। इसी तथ्य को गीता के उपसंहार में धृतराष्ट्र के सचिव संजय ने कहा था- "जहां योगेश्वर कृष्ण हैं और उनके साथ गांडीव धनुषधारी अर्जुन हैं वहीं श्री अर्थात् लक्ष्मी है, विजय है और समस्त वैभव है, यह मेरा सुनिश्चित मत है।" (गीता १८/२८) अब उनके बारे में वयोवृद्ध पितामह भीष्म की सम्मति सुनें। युधिष्ठिर द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ में यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इस समारोह में सर्वप्रथम सम्मान किसे दिया जाये- अर्ध किसे दिया जाये। तब पितामह भीष्म ने कहा- "मेरी सम्मति में वासुदेव कृष्ण ही इस सम्मान के अधिकारी हैं।" इस प्रस्ताव के समर्थन में उनका कहना था कि ये कृष्ण ही हैं जो वेदों और वेदांगों (व्याकरण, निरक्त आदि) के ज्ञाता हैं तथा विज्ञान की उनकी जानकारी भी अद्वितीय है। मेरी सम्मति में तो केशव कृष्ण से अधिक सम्मान का पात्र अन्य कोई नहीं है। और कृष्ण की विनम्रता देखें। राजसूय के समय जब विभिन्न आगन्तुकों को भिन्न भिन्न कार्य सौंपे गये तो कृष्ण ने अपने जिम्मे विद्वानों और धर्मात्माओं के पाद प्रक्षालन का काम लिया।

कृष्ण के समय में विशाल भारत विच्छिन्न हो रहा था। स्वेच्छाचारी राजाओं के अत्याचारों एवं दुराचारों से भारतीय प्रजा त्रस्त और पीड़ित थी। मथुरा में कंस, मगध में जरासंध, विदर्भ में शिशुपाल तथा इन्द्रप्रस्थ हस्तिनापुर में कौरवों के अत्याचारों से जन सामान्य प्रपीड़ित था। कंस यद्यपि कृष्ण का मामा था तथापि वह अपने ससुर जरासंध से मार्गदर्शन लेकर मथुरा तथा ब्रजमण्डल में निरंकुश शासन कर रहा था। कृष्ण ने कंस का वध किया और वहां का राज्य महाराज उग्रसेन को सौंप दिया। वे स्वयं शासक बनने की अपेक्षा सुशासन स्थापित करने में विश्वास करते थे। उनके परामर्श को मानकर सम्राट युधिष्ठिर ने दिग्विजय कर सर्वत्र धर्मात्मा राजाओं को प्रतिष्ठित कर भारत में धर्म राज की स्थापना की।

कृष्ण को युद्ध लिप्सु बताना उनके उदात्त चरित्र की अवज्ञा करना है। जब उन्होंने देखा कि दुर्योधन और उसके भाई पांडवों का न्यायोचित अधिकार देने को तैयार नहीं है, ऐसा लगने लगा कि भाई-भाई में युद्ध अवश्य होगा। ऐसी विषम परिस्थिति में उन्होंने स्वयं के मानापमान की परवाह न कर, पाण्डवों के दूत बन कर हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया। यहां भी राजा दुर्योधन के द्वारा प्रस्तावित राजसी आतिथ्य की अपेक्षा विदुर के समान धर्मात्मा के घर रहकर सामान्य फल फूलों से उदर तृप्ति की। अन्ततः जब उन्होंने देखा कि दुर्योधन युद्ध के लिए कटिबद्ध है, तो अन्तिम उपाय के रूप में उन्होंने धृतराष्ट्र को कहा कि वह गोत्र हत्या के लिए तत्पर दुर्योधन को कारागार में डाल दें तथा भारत भूमि को रक्त रंजित होने से बचा लें। उनका यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ, तो उन्होंने स्वयं को दोनों पक्षों से

शेष पृष्ठ १४ पर

www.thearyasamaj.org

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। – महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। इन्द्रः = सूर्यः देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः।
अग्नये त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता (भौतिकः, परमेश्वरः)
भुरिगार्ची गायत्री छन्द। षड्जः स्वरः। दैव्याय कर्म्मण इत्यस्य ऋष स एव।
यज्ञो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषिभः स्वरः।।
पुनस्ताः कथंभूता आप इन्द्रवृत्रयुद्धं चेत्युपदिश्यते।।
उक्त जल किस प्रकार के हैं तथा इन्द्र और वृत्र का युद्ध कैसे होता है, यह उपदेश किया है।

ओ३म्–

युष्मा ऽ इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्यै यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ।
अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः
पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि।।१३।।

यजु० १-१२।।

पदार्थः–(युष्माः) ताः पूर्वोक्ता आपः। अत्र व्यत्ययः। वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति शसः सकारस्य नत्वाभावश्च (इन्द्रः) सूर्य्यलोकः (अवृणीत) वृणीते। अत्र लडर्थे लङ् (वृत्रतूर्य्ये) वृत्रस्य=मेघस्य तूर्य्योर्१ वधस्तस्मिन्। वृत्र इति मेघनामसु पठितम्।। निघ० १।१०।। तूरी गतित्वरणहिंसनयोरित्यस्मात्कर्मणिण्यत् वृत्रतूर्य्य इति संग्रामनामसु पठितम्।। निघं० २।१७।। (यूयम्) विद्वांसो मनुष्याः (इन्द्रम्) वायुम्। इन्द्रेण वायुना।। ऋ० १।१४।१०।। इतींद्रशब्देन वायोर्ग्रहणम् (अवृणीध्वम्) वृणते= स्वीकुरुध्वम्। अत्र प्रथमपक्षे लडर्थे लङ् (वृत्रतूर्य्ये) वृत्रस्य तूर्य्ये=शीघ्रवेगे। (प्रोक्षिताः) प्रकृष्टतया सिक्ताः सेचिता वा (स्थ) भवन्ति। अत्रापि व्यत्ययः (अग्नये) भौतिकाय परमेश्वराय वा (त्वा) तं यज्ञम् (जुष्टम्) विद्याप्रीतिक्रियाभिः सेवतम् (प्रोक्षामि) सेचयामि (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्निश्च सोमश्च ताभ्याम् (त्वा) तं वृष्ट्यर्थम् (जुष्टम्) प्रीतं प्रीत्या सेवनीयम् (प्रोक्षामि) प्रेरयामि (दैव्याय) दिवि भवं दिव्यं तस्य भावस्तस्मै (कर्मणे) पंचविधलक्षणाचेष्टामात्राय। उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुंचनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि।। वैशे० १।७।। इत्यत्र पञ्चविधं कर्म गृह्यते (शुन्धध्वम्) शुन्धन्ति शोधयत वा। अत्रापि व्यत्यय आत्मनेपदं च (देवयज्यायै) देवानां=विदुषां दिव्यगुणानां वा यज्या–सत्क्रिया तस्यै। छन्दसि निष्टर्क्य०।।अ० ३।१।१२३।। इति देवयज्याशब्दो निपातितः (यत्)

www.thearyasamaj.org

यस्माद्यज्ञेन शोधितत्वात् **(वः)** तासां युष्माकं वा **(अशुद्धाः)** न शुद्धा=अशुद्धा गुणाः **(पराजघ्नुः)** पराहता=विनष्टा भवेयुः। **अत्र लिङर्थे लिट् (इदम्)** शोधनम् **(वः)** तासां युष्माकं वा **(तत्)** तस्मादशुद्धिनाशेन सुखार्थत्वात् **(शुन्धामि)** पवित्री करोमि।। अयं मंत्रः श० १।१।३।८-८-१२ व्याख्यातः।।१३।।

सपदार्थान्वयः – यथाऽयमिन्द्रः सूर्यलोकः **वृत्रतूर्ये** वृत्रस्य=मेघस्य तूर्यो=वधस्तस्मिन् **युष्माः=ताः पूर्वोक्ता अपः अवृणीत=वृणीते, यथा ता इन्द्र=वायुम् वृणीध्वं=वृणते तथैव ता अपो यूयं** विद्वांसो मनुष्या **वृत्रतूर्ये** वृत्रस्य तूर्ये=शीघ्रवेगे **प्रोक्षिताः** प्रकृष्टतया सिक्ताः सेचिता वा **वृणीध्वम्।**

यथा ता आपः शुद्धाः स्थ=भवेयुः भवन्ति **एतदर्थमहं यज्ञानुष्ठाता दैव्याय** दिवि भवं दिव्यं तस्य **भावस्तस्मै कर्मणे** पंचविधलक्षणचेष्टामात्राय **देवयज्यायै** देवानां=विदुषां दिव्यगुणानां वा यज्या=सत्क्रिया तस्यै **अग्नये** भौतिकाय परमेश्वराय वा जुष्टं विद्याप्रीतिक्रियाभिः सेवितं **त्वा=तं यज्ञं प्रोक्षामि** सेचयामि। **एवमग्नीषोमाभ्याम्** अग्निश्च सोमश्चैताभ्यां (जुष्टम्) प्रीतं=प्रीत्या सेवनीयं त्वा=तं (तं) वृष्ट्यर्थं **यज्ञं प्रोक्षामि प्रेरयामि।**

एवं यज्ञशोधितास्ता आपः शुन्धध्वम्=शुन्धन्ति शोधयत वा, **यत्** यस्माद् यज्ञेन शोधित-स्वात् **वः=तासां अशुद्धा** न शुद्धा अशुद्धा (गुणीः) **गुणास्ते पराजघ्नुः** पराहताः=विनष्टा भवेयुः, **तत्-तस्मात्** अशुद्धिनाशेन सुखार्थत्वात् **वः=तासां इदं**=शोधनं शुन्धामि पवित्रीकरोमि।। **इत्येकोऽन्वयः।।**

अथ द्वितीयमन्वयमाह—हे यज्ञानुष्ठातारो **मनुष्याः।** यद् **यदिन्द्रः** सूर्यलोकः **वृत्रतूर्ये** वृत्रस्य=मेघस्य तूर्यो=वधस्तस्मिन् **युष्माः ताः** पूर्वोक्ता आप **इन्द्रं** वायुम् **अवृणीत** वृणीते **यत्=यस्माद्** यज्ञेन शोधितत्वात् च **इन्द्रेण वृत्रतूर्ये** वृत्रस्य तूर्ये=शीघ्रवेगे **ताः प्रोक्षिताः** प्रकृष्टतया सिक्ताः सेचिता वा **स्थ=भवन्ति, तस्माद् यूयं** विद्वांसो मनुष्याः **त्व=तं** (तं) वृष्ट्यर्थं **यज्ञं सदा वृणीध्वं** स्वीकुरुध्वम्।

एवं च सर्वे जनाः—**'दैव्याय** दिवि भवं दिव्यं तस्य भावस्तस्मै **कर्मणे पंचविधलक्षणचेष्टामात्राय देवयज्यायै** देवानां = विदुषां दिव्यगुणानां वा यज्या=सत्क्रिया तस्यै **अग्नये** भौतिकाय परमेश्वराय वा **त्वा=तं** (तं) वृष्ट्यर्थं **जुष्टं** विद्याप्रीतिक्रियाभिः सेवितं **यज्ञं प्रोक्षामि** सेचयामि, **तथा च-अग्नीषोमाभ्यां** अग्निश्च सोमश्च ताभ्यां **जुष्टं प्रीतं**=प्रीत्या सेवनीयं **त्वा=तं यज्ञं प्रोक्षामि प्रेरयामि,'' एवं कुर्वन्तो यूयं** विद्वांसो मनुष्याः **सर्वान् पदार्थान् जनाँश्च शुन्धध्वं=शोध्यत।**

यत् यस्माद् यज्ञेन शोधितत्वाद् **वः** तासां युष्माकं वा **अशुद्धाः=दोषाः** न शुद्धा अशुद्धा गुणाः **ते सदैव पराजघ्नुः=निवृत्ता भवेयुः** पराहताः=विनष्टा भवेयुः, **तत्=तस्मात् कारणात्** अशुद्धिनाशेन सुखार्थत्वाद् **अहं वः युष्माकमिदं=शोधनं शुन्धामि** पवित्रीकरोमि।। **इति द्वितीयोऽन्वयः।।१।१३**

भाषार्थ— जैसे यह **(इन्द्रः)** सूर्यलोक **(वृत्रतूर्ये)** मेघ के वध करने के लिये **(युष्माः)** उन पूर्वोक्त जलों को **(अवृणीत)** स्वीकार करता है, और जैसे वे जल **(इन्द्रम्)** वायु को **(अवृणीध्वम्)** स्वीकार करते हैं

www.thearyasamaj.org

वैसे ही उन जलों को **(यूयम्)** तुम विद्वान् लोग **(वृत्रतूर्ये)** मेघ के शीघ्र वेग में **(प्रोक्षिताः)** उत्तम रीति से सींचे हुए **(वृणीध्वम्)** स्वीकार करो।

जैसे वे जल शुद्ध **(स्थ)** होवें इसलिए मैं यजमान **(दैव्याय)** दिव्य **(कर्म)** पांच प्रकार के कर्मों के लिए, **(देवयज्यायै)** विद्वानों वा दिव्य गुणों के सत्कार के लिए **(अग्नये)** परमेश्वर वा भौतिक अग्नि को जानने के लिए **(जुष्टम्)** विद्या और प्रीति से सेवित **(त्वा)** उस यज्ञ को **(प्रोक्षामि)** घृत से सींचता हूँ। तथा-**(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्नि और सोम से **(जुष्टम्)** प्रीति से सेवनीय **(त्वा)** वृष्टि के लिए उस यज्ञ को **(प्रोक्षामि)** प्रेरित करता हूं।

इस प्रकार यज्ञ से शुद्ध किये जल **(शुन्धध्वम्)** शुद्ध हो जाते हैं **(यत्)** यज्ञ से शुद्ध होने से **(वः)** उन जलों के **(अशुद्धाः)** अशुद्ध गुण अर्थात् दोष **(पराजघ्नुः)** नष्ट हो जाते हैं। **(तत्)** इस लिए अशुद्धि की निवृत्ति से सुखदायक होने से **(वः)** उन जलों के **(इदम्)** इस शोधन को **(शुन्धामि)** पवित्र करता हूं। यह मन्त्र का पहला अन्वय है।।

दूसरा अन्वय– हे यज्ञ करने वाले मनुष्यों! **(यत्)** जिस कारण से **(इन्द्रः)** सूर्यलोक **(वृत्रतूर्ये)** मेघ के वध करने के लिये **(युष्माः)** उन पूर्वोक्त जलों को एवं **(इन्द्रम्)** वायु को **(अवृणीत)** स्वीकार करता है **(यत्)** क्योंकि यज्ञ से शुद्ध होने से सूर्य के द्वारा **(वृत्रतूर्ये)** मेघ के शीघ्र वेग में वे जल **(प्रोक्षिताः)** उत्तम रीति से सींचे गये **(स्थ)** हैं इसलिए **(यूयम्)** तुम विद्वान् लोग **(त्वा)** वृष्टि के लिए उस यज्ञ को सदा **(वृणीध्वम्)** स्वीकार करो।

और–"**(दैव्याय)** दिव्य **(कर्मणे)** पांच प्रकार के कर्मो के लिए **(देवयज्यायै)** विद्वानों वा दिव्य गुणों के सत्कार के लिए **(अग्नये)** परमेश्वर वा भौतिक अग्नि को जानने के लिए, **(त्वा)** उस यज्ञ को वर्षा के लिए, जो **(जुष्टम्)** वा विद्या और प्रीति से सेवित है, **(प्रोक्षामि)** घृत से सींचता हूं, तथा- **(अग्नीषोमाभ्याम्)** उस यज्ञ को **(प्रोक्षामि)** प्रेरित करता हूं" इस प्रकार करते हुए **(यूयम्)** तुम सब विद्वान् लोग सब पदार्थों को और जनों को **(शुन्धध्वम्)** शुद्ध करो।

(यत्) जिससे-यज्ञ से शुद्ध किये हुए **(वः)** उन जलों के और तुम्हारे **(अशुद्धाः)** अशुद्ध गुण अर्थात् दोष सदा के लिए **(पराजघ्नुः)** विनष्ट हो जायें **(तत्)** इसलिए अशुद्धि के नाश से सुखदायक होने से मैं **(वः)** तुम्हारे **(इदम्)** इस शोधन को **(शुन्धामि)** अत्यन्त पवित्र करता हूं। यह मन्त्र का दूसरा अन्वय है।।१।।१३।।

भावार्थः– अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ईश्वरेणाग्निसूर्यावेतदर्थौ रचितौ यदिमौ सर्वेषां पदार्थानां मध्ये प्रविष्टौ, जलौषधिरसान् छित्वा, वायुं प्राप्य, मेघमण्डलं गत्वाऽऽगत्य च शुद्धिसुखकारका भवेयुः।

भावार्थ– इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलंकार है। ईश्वर ने अग्नि और सूर्य को इसलिए रचा है कि ये सब पदार्थो के मध्य में प्रविष्ट होकर, जल और औषधि-रसों का छेदन करके, वायु को प्राप्त हो, मेघमण्डल में जाकर और वहां से पृथिवी पर आकर शुद्ध और सुख के करने वाले हों।

www.thearyasamaj.org

धर्म आत्मोद्धार का साधन है

(धर्मपाल आर्य, २-एफ, कमला नगर, दिल्ली-७)

धर्म आत्मोद्धार का साधन है। धर्म जीवन को उन्नति के शिखर तक ले जाने वाली सीढ़ी है। धर्म मृत्यु और दुःखों के सागर से पार होने की नौका है। धर्म आत्मा-परमात्मा को देखने की कोशिश है। धर्म आध्यात्मिक जीवन की नींव है। वेदों में, शास्त्रों में और स्मृति ग्रन्थों में, रामायण और महाभारत में, पुराणों और गीता में धर्म का महत्व और उसकी पारिवारिक, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में आवश्यकता का विस्तार से वर्णन है। महाभारत में कहा **'यतो धर्मस्ततो जयः''** अर्थात् जहाँ धर्म है वहीं विजय है।

महर्षि वेद व्यास जी कहते हैं कि

ऊर्ध्वबाहुविरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।।

अर्थात् मैं दोनों भुजाओं को ऊपर करके पुकार रहा हूं लेकिन उस (पुकार) को कोई नहीं सुन रहा, जब धर्म से अर्थ और काम की सिद्धि होती है, तो फिर उसका सेवन क्यों नही किया जाता? जो धर्म आत्मोद्धार का साधन है, जो धर्म उन्नति की सीढ़ी है, जो धर्म मृत्यु और दुःखों से तारने की नौका है, जो धर्म आत्मा-परमात्मा के दर्शन का दर्पण है, जो धर्म आध्यात्मिक जीवन की नींव है तथा जिस धर्म का वेदों में क्या, शास्त्रों में क्या, रामायण में क्या, महाभारत में क्या, पुराणों में क्या, विस्तार से वर्णन है, उस धर्म साधन का, उस सीढ़ी का, उस नौका का, उस दर्पण का, आध्यात्मिक जीवन की नींव का ज्ञान कौन करायेगा, उसके सही स्वरूप का समाज को कौन उपदेश करेगा, कौन समाज को धर्म के रास्ते पर चलायेगा? पूरे विश्व में धर्म के असली मर्म को कौन प्रचारित-प्रसारित करेगा। इस प्रकार के ऐसे अनेक यक्ष प्रश्न हैं जिनका उत्तर आज आवश्यक हो गया है। मेरे विचार से इन समस्त प्रश्नों का उत्तर है कि साधु, सन्त, महात्मा, संन्यासी, विद्वान्, आचार्य, उपदेशक ही समाज को धर्म के रास्ते पर चलाएंगे और ये ही धर्म के वास्तविक स्वरूप को दुनियां के सामने रखेंगे, और न केवल सही स्वरूप रखेंगे, अपितु उस पर चलने के लिए समाज को प्रेरित भी करेंगे। धर्म और संस्कृति के प्रचार प्रसार में साधुओं, सन्तों और संन्यासियों का सर्वाधिक योगदान रहा है। सच्चे साधु, सच्चे सन्त और सच्चे संन्यासी ही राष्ट्र को, समाज को, न केवल धार्मिक, सामाजिक, नैतिक व चारित्रिक नेतृत्व प्रदान करते हैं अपितु राजनीतिक दिशा भी प्रदान करते हैं। धर्म हमारे जीवन का लक्ष्य रहा है; नैतिकता हमारे जीवन का लक्ष्य रही है। चरित्र हमारे जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति रही है। उपरोक्त बातें जितनी सत्य हैं, उससे अधिक सत्य यह है कि उपरोक्त लक्ष्य को जानने में, वहाँ तक पहुंचने में और उसे प्राप्त करने में साधुओं का, संन्यासियों का, सन्तों का, महात्माओं का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उपरोक्त (साधु, सन्त, महात्मा, साधक संन्यासी) शब्द ऐसे हैं, जिन्हें समाज में पवित्रता का, सज्जनता का, त्याग का, तपस्या का, सत्य का, दया आदि समस्त गुणों का पर्याय माना जाता है। यदि किसी के गुणों को कहना हो तो साधु, संन्यासी, सन्त, महात्मा, भक्त इनमें से किसी एक शब्द के प्रयोग से ही समस्त सद्गुणों का ग्रहण हो जाता है। सद्गुणों के प्रतीक उपरोक्त शब्दों को समाज में बहुत ऊंची पदवी मिली हुई है। जिस व्यक्ति के साथ उपरोक्त शब्द जुड़ा तो समाज में, राष्ट्र में उसे बड़े ही आदर के साथ देखा गया और ऐसे व्यक्तित्व को जो यश प्राप्त हुआ, वो इतिहास में अमर हो गया। तुलसी दास ने सत्य ही लिखा कि - "सन्त हृदय नवनीत समाना।" सन्तों का हृदय नवनीत के समान क्यों होता है इसका उत्तर देते हुए कवि कहते हैं कि -

www.thearyasamaj.org

निज परिताप द्रवै नवनीता। परपरिताप सुसन्त पुनीता। अर्थात् मक्खन तो अपनी पीड़ा के कारण पिघलता है। लेकिन सन्तों/साधुओं का हृदय तो दूसरों की पीड़ा के कारण पिघलता है। परन्तु त्याग के प्रतीक सन्तों पर, संयम के प्रतीक साधुओं पर, साधुओं के प्रतीक संन्यासियों पर, तप के प्रतीक महात्माओं पर जब समाज को बहकाने के, बलात्कार के, व्यभिचार के घिनौने आरोप लगें तो समस्त समाज का सिर शर्म से झुक जाता है तथा सन्त समाज को कई सवालों से दो चार होना पड़ता है। कुछ छद्मवेशी सन्तों के कदाचार के कारण पूरे संन्यासी वर्ग को शर्मिन्दगी का सामना करना पड़ता है। अभी कुछ दिन पूर्व एक तथाकथित सन्त के दुराचार का पर्दाफाश हुआ है। उपरोक्त मामले के प्रकाश में आते ही उसके पक्ष-विपक्ष में तर्क-वितर्कों का दौर शुरू हो गया। कुछ ने इस प्रकरण को राजनीति से जोड़ते हुए इसे राजनैतिक साजिश बताने की कोशिश की। वे महानुभाव अपने इस प्रयास में सफल भी हो जाते ऐसे प्रकरणें में प्रायः होता यही है कि जब किसी पर आरोप लगता है तो वो इसे राजनैतिक साजिश बताकर पाक-साफ बनने की कोशिश करता है। राजनेता तो प्रायः इसी शैली पर ही काम करते हैं। उनके द्वारा इस प्रकार से किया जाने वाला व्यवहार तो समझ में आता है। लेकिन जो सन्त है, संन्यासी है, साधु है, महात्मा है और त्यागी, वैरागी है उस पर जब आरोप लगे और वो इसे राजनैतिक साजिश बताए, जांच से कतराये, गिरफ्तारी से बचता फिरे, पीड़ित पक्ष को प्रलोभन दे, धमकी दे तो फिर एक सन्त में और राजनेता में अन्तर क्या हुआ। एक तरफ तो आप अपने अनुयायियों को सन्देश देते हो कि "सांच को आंच नहीं और झूठ के पांव नहीं और दूसरी तरफ जब आपसे मामले में पूछताछ की जाती है तो आप उस समय जो व्यवहार अपनाते हैं वो व्यवहार सन्तों का तो कम से कम नहीं है। जबकि आपसे आशा तो यह है कि आप अपने ऊपर लगे आरोपों का उत्तर सच्चाई और दृढ़ता के साथ दें। राजनीति में सन्तत्व का होना तो वाञ्छित है लेकिन सन्तत्व में राजनैतिक पैंतरेबाजी होना मेरी समझ से तो एक दम बाहर है। इस सन्दर्भ में मैं अपने पाठकों को बता दूं कि उपरोक्त (नाबालिग से छेड़छाड़ व यौन शौषण का) आरोप किसी आम आदमी के नहीं अपितु उस लड़की के आरोप हैं, जिसका परिवार आरोपी सन्त का कट्टर भक्त था। मैं उस कन्या के साहस की प्रशंसा करूंगा। जो तमाम बाधाओं, धमकियों, प्रलोभनों को अनदेखा कर अपने कदम पर अटल रही और जिसका परिणाम यह हुआ कि उस साहसी बिटिया के साथ पिता ने अपना विरोध मजबूती से व्यक्त किया। देश के मीडिया ने साथ दिया। शिवा, शिलपी और शरत जो उस आरोपी सन्त के राजदार, सेवादार थे सबने अपनी-२ बातें, अपना पक्ष पुलिस के सामने रखा जो कि पूरी तरह उस सन्त के खिलाफ था। चावला नामक व्यक्ति जो उसके अपने निजी सचिव थे उन्होंने जो रहस्य, जो-जो तथ्य सामने रखे उनमें से यदि एक भी सत्य है तो ऐसे व्यक्ति को सन्त कहना भी बहुत बड़ा पाप है। निजी वैद्य अमृत प्रजापति ने जो बातें मीडिया के सामने सार्वजनिक कीं, वे कम हैरान-कर देने वाली नहीं। अफीम को पञ्चेड़ बूटी का नाम देना ये सन्त की स्वयं की कल्पना थी क्योंकि आयुर्वेद में इस प्रकार की किसी पञ्चेड़ बूटी का वर्णन नहीं है। न्यायालय में दिये प्रार्थनापत्र में न्यायाधीश से इन्होंने आग्रह किया कि इन्हें त्रिनाड़ी शूल नाम की बीमारी है, जिसका उपचार सिर्फ नीता नाम की निजी चिकित्सका ही कर सकती है। इस अनाचरण से सन्त समाज दागदार हुआ है। इस प्रकरण के खुलासे के बाद सन्तों में सन्तों, साधुओं, संन्यासियों के लिए एक आचार संहिता की बात उठी। किन्तु सन्तों संन्यासियों के लिए आचार संहिता तो कभी से बनी हुई है ही। जिसका उल्लेख महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के पांचवे समुल्लास में विस्तार से किया है। स्वामी जी लिखते हैं कि - "लोकैषणायाश्च, वित्तेषणायाश्च, पुत्रैषणायाश्चोत्थाय भैक्षचर्यं चरन्ति"। अर्थात् - संसार की समस्त एषणाओं से ऊपर उठकर संन्यासी लोग

www.thearyasamaj.org

भिक्षुक होकर रात-दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहते हैं। तुलसी दास जी ने राम चरित मानस में लिखा है कि

"वैखानस सोहि सोचन जोगू। तप विहाय जेहि भावाहि भोगू। वह संन्यासी शोक करने योग्य है, जो त्याग, तपस्या, स्वाध्याय, संयम छोड़कर भोग विलास में डूबा हुआ है। अन्त में मैं यही कहना चाहूंगा कि ये तो कन्या के साहस का परिणाम है कि सन्त के वेष में एक असन्त बेनकाब हुआ है ऐसे न जाने कितने तथाकथित सन्त हैं, जिनके काले कारनामे प्रथम तो सामने आते नहीं और आते भी हैं, तो कुछ दिनों के बाद गुमनामी में दफन हो जाते हैं। गुड़िया के साहस को उसके परिवार की हिम्मत को, मीडिया को, मैं अपना समर्थन करते हुए समाज को जागरुक करने में इन सबके योगदान की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ।

परन्तु इस प्रकार के तथाकथित सन्तों में इस प्रकार की अमानवीय भावनाएं क्यों पनपती हैं, इसके पीछे के कारणों को खोजना होगा। प्रायः देखने में आया है कि जहां गुरुडम का प्रभाव जितना अधिक रहा है, वहां इस प्रकार की संभावनाएं अधिक बढ़ जाया करती हैं। धर्मभीरू जनता की धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ करने का इससे अधिक घृणित स्वरूप और कहीं मिलेगा? काश! हमारी धर्मभीरू जनता चेते और शिक्षा ले।

❑❑

पं0 श्री विश्वदेव जी शास्त्री दिवंगत

जन्मतिथि : 21 सितम्बर 1930 **देहावसान : 16 सितम्बर, 2013**

श्रीमद्दयानन्द वेद विद्यालय गुरुकुल गौतम नगर के प्रारम्भिक स्नातकों में से एक वैदिक विद्वान् थे पं. श्री विश्वदेव जी शास्त्री। गुरुकुल के संस्थापक व्याकरण-सूर्य आचार्य श्री राजेन्द्रनाथ जी शास्त्री (स्वामी सच्चिदानन्द योगी) के प्रिय एवं योग्यतम शिष्यों में आप भी थे। आप वेद, दर्शन, व्याकरण आदि शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन में जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक प्रवृत रहे।

आर्ष गुरुकुल टटेसर जौन्ती दिल्ली में वे ५ वर्ष आचार्य तथा ५ वर्ष उपाचार्य पद पर रहे। गुरुकुल सर्वदानन्द साधु आश्रम अलीगढ़ तथा गुरुकुल दयानन्द वेद विद्यालय में उपाचार्य पद पर रहे। इसके अतिरिक्त विभिन्न गुरुकुलों में भी वे पढ़ाते रहे।

अपने जीवन के अन्तिम चरण में भी लगभग डेढ़ वर्ष तक श्रीमद् दयानन्द आर्ष गुरुकुल खेड़ा खुर्द में विरक्त जीवन बिताते हुए अपनी निर्मल विद्या को ब्रह्मचारियों में वितरित करते रहे।

अपनी आजीविका के लिए छापेखाने का व्यवसाय भी किया तो उसे नाम दिया 'वैदिक प्रेस', जो अपने उत्तम मुद्रण के लिए आर्यजगत् में भलीभांति जाना जाता है। शुद्ध और दोष-मुक्त प्रूफ रीडिंग के लिए भी उन्होंने अपनी विद्वता और निष्ठा की अमिट छाप छोड़ी है।

अपने भरे-पूरे परिवार के पालन-पोषण का कर्तव्य पूरी क्षमता से निभाते हुएं भी उन्होंने अपने परिष्कृत चिन्तन और लेखन का स्वभाव कुण्ठित नहीं होने दिया। उनके कुछ उल्लेखनीय शोध-निबन्ध इस प्रकार हैं - १. वेद-मन्त्रों के विनियोग में ओंकार का प्रयोग; २. एते वै सप्तदोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः, ३. पूजनीय या उपासनीय-शंका-समाधान; ४. ईश्वर पूजनीय और उपासनीय भी है-शंका-समाधान; ५. ईश्वर के सौ नाम; ६. वेद पारायण यज्ञ; ७. महर्षि के वेदभाष्य की श्रेष्ठ शैली;, ८. ओ३म् स्वाहा शास्त्रीय ही है; ९. आर्यसमाज की यज्ञपद्धति; १०. नवसस्येष्टि पर्व-होली। ऐसे वैदिक विद्वान् को "दयानन्द सन्देश" परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

www.thearyasamaj.org

हमने क्या खोजा- भारत या इण्डिया? (७)

(राजेशार्य आट्टा साढौरा, 1166, कच्चा किला, साढ़ौरा) 133204

प्रिय पाठकवृन्द! पिछली शताब्दी में न जाने किस विचारधारा से प्रेरित होकर हमारे इतिहास लेखकों ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि मुगलों ने कभी मन्दिर नहीं तोड़े, अपितु औरंगजेब ने भी हिन्दू मठों को दान दिया। किसी को जबरदस्ती मुसलमान नहीं बनाया। औरंगजेब जिन्दा पीर था; शाहजहां कला-प्रेमी बादशाह था; जहांगीर न्यायप्रिय था; अकबर तो देवता था और बाबर भारतीय संस्कृति से इतना प्रेम करता था कि उसने अपने वसीयत-नामे में हुमायूं को आदेश दिया था कि तुम हिन्दुओं के साथ सहनशीलता का व्यवहार करना और गौ-हत्या बन्द करवा देना। (डॉ. आशीर्वाद लाल जैसे इतिहासकार बाबर के तथाकथित वसीयतनामे (भोपाल लेख) को जाली सिद्ध कर चुके हैं। बाबर ने हर हिन्दुओं को काफिर लिखा है और ऐसा भी नहीं लगता कि हुमायूं ने गौ-हत्या बन्द करवा दी हो)।

इतिहास में वर्णित उनके अत्याचार छिपाकर उन्हें दयालु, उदार, धर्मनिरपेक्ष, राष्ट्रीय एकता स्थापित करने वाले आदि गुणों से अलंकृत करने और अपने वीर पूर्वजों की उपेक्षा करने वाले हमारे कई नेताओं ने सोचा था कि ऐसा करने से हमें स्वतंत्रता संग्राम में मुस्लिम भाईयों का साथ मिल जाएगा। देश विभाजक मुस्लिम लइग बनने पर भी हमने खिलाफत आन्दोलन का खुलकर समर्थन किया, पर बदले में हमें अपने मुस्लिम भाइयों से मिला मोपला विद्रोह। अगस्त १९२१ में केरल के मालाबार क्षेत्र में वहां के हिन्दुओं पर मोपला मुसलमानों ने आक्रमण कर उनके सामने 'इस्लाम या मौत' का विकल्प प्रस्तुत किया, स्त्रियों का अपहरण हुआ, उनकी सम्पत्ति लूटी और नष्ट की गई।

आर्यसमाज के वीर पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल, गणेश शंकर विद्यार्थी, भक्त फूलसिंह आदि मुस्लिम कट्टरवाद की भेंट चढ़ गए। हैदराबाद के निजाम उस्मान अली (दक्षिण का औरंगजेब) के हिन्दुओं पर किए जाने वाले अत्याचार को मिटाने के लिए २७ आर्यवीरों ने (१९३९ ई.) अपने जीवन की आहुति दी। इसी वर्ष बंगाल में भाई जिन्ना से मिला डायरैक्ट एक्शन (हिन्दुओं का कत्लेआम)।

यह सब 'भारत की खोज' के लेखक की आंखों के सामने हो चुका था। फिर भी लेखक ने इस्लाम के भाईचारे से प्रभावित होकर हिन्दुओं का मुसलमान बनना लिखा है।

"इस्लाम के भाईचारे और अपना मानने वालों के बीच बराबरी के सिद्धान्तों का (मुगल काल में) विशेषकर उन लोगों पर गहरा असर पड़ा जिन्हें हिन्दू समाज में बराबर का दर्जा देने से इंकार कर दिया गया था।... . यह बात ध्यान देने लायक है कि वर्गों का प्रभाव इस तदह तक था कि नियमतः लोगों ने इस्लाम में धर्म-परिवर्तन सामूहिक रूप से किया। पर निम्न श्रेणी के लोगों मु मुहल्ले मे एक जाति के लोग, या फिर लगभग सारा गांव ही धर्म बदल लेता था।"

समीक्षा - यह ठीक है कि मुस्लिम आक्रमणों के समय कठोर हुई जाति-पाति की निर्दयता व हिन्दुओं की मूर्खता के कारण भी कुछ लोगों को इस्लाम ग्रहण करना पड़ा, पर यह भी सत्य है कि इस्लाम के भाईचयारे से प्रभावित होकर कोई भी हिन्दु मुसलमान नही बना। वह केवल भय (प्राण-दण्ड) या लोभ (चार पत्नियां, दण्ड

www.thearyasamaj.org

मुक्ति व कर मुक्ति आदि) से ही मुसलमान बना था। यह भी सत्य है कि इस्लाम ग्रहण करने के बाद भी जाति-पाति ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। मुगाल काल में उन्हें 'काला मुसलमान' कहा जाता था, हिन्दुओं की तरह उन्हें भी द्वितीय श्रेणी का माना जाता था। उनमें केवल इतना संतोष था कि मेरा भी मजहब वही हे जो शासकों का है और शुक्रवार को मैं भी उन्हीं के साथ खड़े होकर मस्जिद में नमाज पढ़ सकता हूं।

यदि अपनों के दुर्व्यवहार और इस्लाम का बराबरी का सिद्धान्त ही मत-परिवर्तन के कारण होते, तो डॉक्टर अम्बेडकर इतने वर्ष (१९३५ से १९५६ ई.) सोच विचार नहीं करते और मुसलमान बनने के बदले हैदराबाद के निजाम द्वारा दिये जाने वाले दो करोड रु. ठुकराकर अपने २ लाख अनुयायियों के साथ बौद्ध नहीं बनते।

निम्न श्रेणी के लोग अधिकतर रोजी-रोटी तक ही सीमित होते हैं। उनमें अधिक विवेक नहीं होता; बल का भी अभाव होता है। अतः सम्भव है कि उन्हें डरा धमकाकर या कुछ लालच से मुसलमान बना लिया गया हो, (जैसे अब वनवासी, गिरिवासी लोगों को तुच्छ सी सहायता देकर उन्हें ईसाई बनाया जा रहा है) पर इस्लाम के गुणों से प्रभावित होकर वे स्वेच्छा से मुस्लिम नही बने। हमारा इतिहास ऐसे बलिदानियों की गाथाओं से भरा हुआ है, जिन्होंने धर्म के लिए अपने सिर कटवा दिये। लेखक ने गुरू अर्जुनदेव, गोकुला गुरु तेगबहादुर, शम्भाजी, बन्दा वैरागी, छोटे बच्चे जोरावर सिंह, फतेहसिंह व धर्मवीर हकीकत राय जैये किसी भी बलिदानी का नाम नहीं लिखा। क्या अपने बलिदानी पूर्वजों का नाम लेना साम्प्रदायिकता है? और क्या ऐसा करके लेखक या देश मुस्लिम समुदाय की सहानुभूति प्राप्त कर सकता? फिर देश बंटा क्यों?

औरंगजेब का वर्णन करते हुए लेखक से सत्य प्रकट हो ही गया कि मुगल भारतीय नहीं बन सके। पर लेखक कहता हे कि उस (औरंगजेब) ने अपने पूर्वजों के द्वारा किए मए कामों पर पानी फेरने का प्रयास किया। जबकि वास्तविकता तो यह है कि थोड़ा बहुत जो कुछ अच्छा अकबर ने किया था, उस पर पानी तो जहांगी ने ही फेर दिया था - राज्य प्राप्ति के लिए अपने बेटे खुसरों की आंखें निकलवाकर जेल में डाला था और मौका पाकर शाहजहां ने उसे जहर देकर मार दिया। अपने हाथ से राज्य खिसकता देखकर शाहजहां ने जहांगीर की तरह तीन वर्ष अपने पिता से विद्रोह किया। जहांगीर के मरते ही शाहजहां ने अपने भाई शहरयार को बन्दी बनाकर उसकी आंखें निकलवा दीं। बाद में उसे सभी राजकुमारों के साथ मौत के घाट उतारकर शाहजहां गद्दी पर बैठा। फिर यदि औरंगजेब और उसके वंशजों ने गद्दी के लिए भाईयों का खून बहाया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हिन्दुओं पर किये गये औरंगजेब के अत्याचारों के विरुद्ध खड़े होने वाले हिन्दुत्व के विषय में लेखक ने लिखा -

"मुगल साम्राज्य के दूर-दूर तक फैले क्षेत्रों में उत्तेजना फैल गई और पुनर्जागरणवादी विचार पनपने लगा जिसमें धर्म और राष्ट्रवाद का मेल था। वह आधुनिक युग जैसा धर्मनिरपेक्ष ढंग का राष्ट्रवाद नहीं था, न ही इसकी व्याप्ति पूरे भारत में थी।"

समीक्षा - हमें "धर्मनिरपेक्षता' और 'मिश्रित संस्कृति' का चश्मा क्या मिल गया कि हम हर युग को उसी चश्मे से देखने लगे। गुरु गोविन्द सिंह, शिवाजी, छत्रसाल, राणा राजसिंह, दुर्गादास राठौर, गोकुला अदि वीरों द्वारा वह स्वतंत्रता संग्राम विधर्मी व विदेशी अत्याचार के विरुद्ध लड़ा जा रहा था, जो धर्म की स्वतंत्रता भी चाहता था और राष्ट्र की भी। इसलिए उसमें इन दोनों का मेल कोई विचित्र नहीं था। वहां बात विदेशी शत्रु को देश से भगाने की थी, न कि उसके साथ बैठकर खाना खाने की, जो वे तुष्टीकरण के लिए 'धर्मनिरपेक्षता'

www.thearyasamaj.org

शब्द गढ़ते। यह तो लेखक के युग की आवश्यकता से उत्पन्न हुआ था या उत्पन्न किया गया था। यह स्वतंत्रता संग्राम पूरे भारत में व्याप्त न होने से महत्वहीन नहीं हो गया। उसमें समस्त हिन्दू समाज खड़ा हुआ था। उस समय आज की राजनीति से प्रेरित हुआ 'सिख' नहीं था, जो लेखक ने लिख दिय कि वे (सिख) हिन्दू और मुस्लिम विचारों का किसी हद तक समन्वय करने वाले शांतिप्रिय समुदाय के प्रतिनिधि थे। यह जेम्स मिल तो नहीं बोल रहा?

गुरु नानक देव द्वारा बाबर के अत्याचार सहने, गुरु अर्जुनदेव को तड़पाकर मारने, गुरु हरगोविन्द को कैद करने; गुरु तेगबहादुर का सिर काटने आदि के परिणामस्वरूप गुरु गोविन्दसिंह को औरंगजेब के अत्याचारों के विरुद्ध सशस्त्र आन्दोलन चलाना पड़ा। उनके परिवार पर हुए अत्याचारों को देखने से यह सहज ही विश्वास नहीं होता कि सिख हिन्दू और मुस्लिम विचारों का समन्वय थे। वे शुद्ध हिन्दू थे और और हिन्दुत्व की रक्षा के लिए ही उनका बलिदान हुआ था। गुरु जी के पंच प्यारे व खालसा सैनिक सभी हिन्दू थे। उनके बाद खालसा सैनिकों का नेतृत्व कर मुस्लिम अत्याचार से टकराने व बलिदान देने वाला बन्दा वैरागी भी हिन्दू था और गुरु गोविन्द सिंह जी का नारा था -

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजै।
जगै धर्म हिन्दू सकल भण्ड भाजै।।

भले ही राजनैतिक षड्यंत्र का शिकार होकर सिख कभी-कभी अपने आपको हिन्दू से अलग मानने लगते हैं, पर यह सत्य है कि जब भी इस्लामिक अत्याचार हुए हैं या होते हैं तो सिखों को हिन्दू मानकर ही मारा गया है।

"हिन्दू राष्ट्रवाद उस व्यापक राष्ट्रीयतावाद के मार्ग में बाधक या जो धर्म और जाति के भेदभाव से ऊपर उठ जाती है।"

समीक्षा - यह धर्म और जाति से ऊपर उठकर व्यापक राष्ट्रीयतावाद स्थापित करने वाला कौन था, जिसमें हिन्दू राष्ट्रवाद बाधा डाल रहा था? क्या औरंगजेब का दार उल इस्लाम स्थापित करने वाला राष्ट्रवाद धर्म और जाति से ऊपर था? ऐसे ही किसी लेखक ने आरोप लगाया था कि अकबर भारत में राष्ट्रीय एकता स्थापित करना चाहता था (लेखक ने भी ऐसा ही लिखा है) और महाराणा प्रताप उसमें बाधा डाल रहा था। क्या महारणा प्रताप के बाद राष्ट्रीय एकता स्थापित हो गई गई? वास्तव में जो विचार उस काल में उत्पन्न ही नहीं हुए थे उनके लिए अकबर आदि की प्रशंसा की जा रही है और महाराणा प्रताप या हिन्दू राष्ट्रवाद को दोष दिया जा रहा है। वह किसी मार्क्स या लेनिन का युग नहीं था जो धर्म और जाति से ऊपर उठकर राष्ट्रवाद की कल्पना की जाती। अपने युग की मान्यताएं अतीत पर थोंपने वाले लोग इतिहास के साथ न्याय नहीं कर सकते।

यदि देश-धर्म को साथ लेकर चलने वाला हिन्दू राष्ट्रवाद व्यापक राष्ट्रीयतावाद में बाधक था, तो लेखक ने यह क्यों लिखा - "मराठे अपनी राजनीतिक और सैनिक व्यवस्था और आदतों में उदार थे और उनके भीतर लोकतांत्रिक भावना थी। इससे उन्हें शक्ति मिलती थी। शिवाजी औरंगजेब से लड़ा जरूर पर उसने मुसलमानों को खुलकर नौकरियां दीं।

"मुगल साम्राज्य के खंडित होने का महत्वपूर्ण कारण आर्थिक ढांचे का चरमराना था। किसान बार-बार विद्रोह करते थे, इनमें से कुछ आंदोलन बड़े पैमाने पर हुए थे।"

समीक्षा - औरंगजेब ने तो हिन्दुओं पर जजिया कर, तीर्थ कर आदि बहुत से अतिरिक्त कर लगा रखे थे। फिर आर्थिक ढांचा क्यों डगमगाया ? किसानों के बार बार विद्रोह का मूल कारण क्या था? जाटवीर गोकुला का अंग-अग कुल्हाड़ों से काटा जाना व उसके परिवार

www.thearyasamaj.org

को जबरदस्ती मुसलमान बनाना और राजाराम द्वारा सिकन्दरा में अकबर के मकबरे को तोड़ना; अकबर की कब्र खोदकर उसकी हड्डियों को जलाना आदि कार्य सिद्ध करते हैं कि यह सामान्य विद्रोह नहीं, अपितु स्वतंत्रता संग्राम था, जिसके परिणामस्वरूप भरतपुर राज्य की स्थापना हुई। वास्तविकता तो यही है कि मुगल साम्राज्य के खंडित होने का कारण भारत को इस्लामिक देश बनाने के लिए हिन्दुओं पर किये जाने वाले औरंगजेब के धार्मिक अत्याचार थे।

राज्य के लिए पिता से विद्रोह और भाई-भतीजों की हत्या करना तो मुगलों व सभी सुल्तानों के लिए आम बात थी, पर औरंगजेब ने तो पिता को मरने तक कैद में रखा, यही नहीं राज्य पाकर भी उसने अपने तीनों पुत्रों को भी जेल में डाल दिया, जिनमें से सबसे बड़ा पुत्र जेल में ही मर गया और दूसरा लगभग आठ वर्ष जेल में सड़ने के बाद छोड़ा गया। इसी प्रकार उसकी एक पुत्री जैबुन्निसा भी जेल में डाल दी गई थी, जो जेल में ही सड़कर मर गई। ऐसे क्रूर दरिन्दे ने भारत को इस्लामी देश बनाने के लिए हिन्दुओं पर क्या-क्या जुल्म ढाए होंगे, इसका सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है। वास्तव में उनका पाप ही मुगलों को ले डूबा था, आर्थिक ढांचे का चरचराना नहीं।

इतिहास का उद्देश्य मात्र कुछ घटनाओं का संग्रह करना ही नहीं होता, अपितु भावी पीढ़ी में अच्छे संस्कार भरने के लिए प्रेरक प्रसंगों को मुख्यतः उजाकर करना भी होता है। 'भारत की खोज' पुस्तक में ऐसे प्रसंगों और प्रेरक चरित्रों का प्रायः अभाव है। भारत को सत्याचरण, दानशीलता, परोपकार, सदाचार, त्याग व बलिदान से भरे हरिश्चन्द्र, दधीचि, शिवि, कर्ण, दिलीप, रघु, भरत, श्रवण, हनुमान, विक्रमादित्य, भोज आदि के आचरण में भी खोजा जा सकता था, पर वहां जाने से लेखक को साम्प्रदायिक होने का डर लगा होगा और बाबार, अकबर, औरंगजेब आदि का गुणगान कर लेखक उदारवादी (धर्मनिरपेक्ष) बन गया।

एक बार पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी 'गिल्म्पसेज आफ वर्ल्ड हिस्ट्री' (विश्व इतिहास की झलक) आचार्य विनोबा भावे को भेंट की। उन्होंने देखा कि उसमें बाबर अकबर आदि को अधिक स्थान दिया गया है। जबकि तुलसी की रामचरितानस को केवल दो चार पंक्तियों में पूरा कर दिया। कुछ दिनों बाद उनकी प्रयाग में पुनः भेंट हुई। पं. नेहरू ने उनसे पूछा कि उक्त पुस्तक कैसी लगी। अगले दिन प्रयास में एक जनसभा थी, जिसमें पं. नेहरू भी उपस्थित थे। श्री विनोबा भावे ने जनता से पूदा - 'क्या आपने औरंगजेब का नाम सुना है? सुना हो तो, हाथ ऊंचा करें।' कुछ गिने-चुने व्यक्तियों ने हाथ उठाये। फिर उन्होंने पूछा-'क्या आप अकबर के बारे में जानते हो? कुछ अधिक व्यक्तियों ने हाथ उठाए। तीसरी बार पुनः पूछा। - 'क्या आप रामचरितमानस के बारे में जानते हैं? एकाएक सभी के हाथ उठ गए। आचार्य विनोबा भावे ने पं. नेहरू की ओर देखा कि जनमानस उनकी पुस्तक के विषय में बता रहा है।

अगले पृष्ठों में लेखक ने समाज सुधारकों में से सबसे अधिक लिखा है स्वामी विवेकानन्द और सर सैयद अहमद खां के विषय में। जबकि उन्होंने कोई समाज सुधार नहीं किया, मात्र कुछ जागृति लाए। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं - मैं किसी सामयिक जीवन सुधार का प्रचारक नहीं हूं। मैं केवल कुछ दोषों को दूर करने का प्रयास भी नहीं कर रहा हूं। ... जाति प्रथा तोड़ने से उन (स्मृतिकारों) का मतलब कदापि यह नहीं था कि शहर भर के सब लोग एक साथ बैठकर शराब-कबाब उड़ायें (यह तो किसी भी समाज सुधारक का नहीं है) सब मूर्ख और पागल लोग चाहे जब जहां, जिनके साथ ब्याह रचा लें... और न उनका यही विश्वास था कि देश की समृद्धि का मापदण्ड उनकी विधवाओं के पुनर्विवाहों

www.thearyasamaj.org

की संया पर निर्भर है।"

"हमारे समाज में अनेकों दोष होंगे किन्तु प्रत्येक अन्य समाज में भी तो दोष हैं। दोष से पूर्ण मुक्ति पाने का विचार करना सही रास्ता नहीं है।.... एक सांस भी नहीं ली जा सकती बिना किसी की हिंसा किये, भोजन ाक एक ग्रास नहीं खाया जा सकता बिना किसी को इससे वंचित किये।"

"विधवा विवाह की समस्या का सम्बन्ध भारत की ७० प्रतिशत नारियों से नहीं है और ऐसे सब प्रश्न भारत के उच्च वर्णों के ही हैं, जो जन साधारण को वंचित कर स्वयं शिक्षित हुए हैं। प्रत्येक प्रयत्न उनके घरों की सफाई के लिए ही हुआ। किन्तु यह सच्चा सुधार नहीं है।"

"कुछ लोग सुरा के विरुद्ध कट्टर होते हैं, कुछ लोग सिगार के विरुद्ध। कुछ समझते हैं यदि लोग सिगार पीना छोड़ दें तो संसार में स्वर्णयुग आ जायेगा। भारत में कुछ कट्टरवादी सुधारक सोचते हैं कि यदि कोई स्त्री अपने पति के मरने के पश्चात् दूसरा विवाह कर लेगी तो सब बुराइयों का अन्त हो जायेगा। यह निरी कट्टरवादिता है।" (उत्तिष्ठ! जाग्रत!!)

"अब देश के लोगों को मछली-मांस खिलाकर उद्यमशील बना डालना, जगाना होगा....। नहीं तो धीरे-धीरे देश के सभी लोग जड़ बन जाएंगे....। इसलिए कह रहा था, मछली और मांस खूब खाना।" (जीवन चरित्)

क्या सही है स्वामी विवेकानन्द का अद्वैत-दर्शन का एकेश्वरवाद? क्या लेखक ने इसीलिए लिखा है कि विवेकानन्द ने कर्मकांड के निरर्थक तात्विक-विवेचनों और तर्कों की घोर निंदा की? तभी तो स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है- "यदि मूर्ति पूजा के द्वारा श्री रामकृष्ण परमहंस जैसे साधु उत्पन्न हो सकते हैं, तब आप क्या लेना पसन्द करेंगे - इन सुधारकों के थोथे तर्क अथवा अधिक से अधिक मूर्तियां?" (उ.जा.)

जर्मनी के जिस मैक्समूलर ने लार्ड मैकाले से धन पाकर भारतीयों में वेदों के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए वेदों के अर्थ का अनर्थ किया व आर्यों को विदेशी (मध्य एशिया का निवासी) प्रचारित किया, उसे स्वामी विवेकानन्द सापनाचार्य का अवतार मानते थे, क्योंकि उसने रामकृष्ण परमहंस से सम्बन्धित दो पुस्तकें लिखी थी। स्वामी विवेकानन्द यहीं शान्त नहीं हुए, जर्मनी में मैक्समूलर दम्पत्ति का अतिथि बने तो उन्हें व वशिष्ठ और अरुन्धती दिखाई देने लगे। धन्य हो यह देशभक्ति और समाज सुधार।

"वे (सर सैयद अहमद खां) किसी रूप में हिंदू विरोधी या सांप्रदायिक दृष्टि से अलगाववाद नहीं थे।"

समीक्षा - यदि अलगाववादी नहीं थे, तो कहने की क्या आवश्यकता हुई? जब लेखक स्वयं मानता है कि उन्होंने मुस्लिमों को कांग्रेस से अलग रखने की कोशिश की, तो अलगाववाद और कैसे होता है? उसकी मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ में यही तो सिखाया जाता था। दक्षिण का औरंगजेब कहलाने वाला हैदराबाद का निजाम उस्मान अली और कश्मीर से छल करने वाला शेख अब्दुल्ला उसी यूनिवर्सिटी की उपज ही तो थे। द्विराष्ट्र ाि सिद्धान्त उसी से तो उपजा था, जिसे जिन्ना ने आगे बढ़ाया।

"स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक अत्यंत महत्वपूर्ण सुधार-आन्दोलन की शुरूआत की। लेकिन....। यह आर्यसमाज का आन्दोलन था और नारा था 'वेदों की ओर लौटो।' इस नारे का वास्तविक अर्थ था वेदों के समय से आर्य धर्म में होने वाले निकास का निषेध।"

समीक्षा - इस नारे का यह वास्तविक अर्थ स्वामी दयानन्द ने बताया या लेखक की कल्पना है? वैदिक शिक्षा को अपने जीवन में अपनाकर तो लोगों ने आत्मिक व भौतिक उन्नति की है। विकास का निषेध किसने किया? और लेखक विकास किसे मानता है? जिसका

www.thearyasamaj.org

निषेध किया गया? महर्षि दयानन्द ने निषेध किया है - शराब, मांसाहार, वेश्यावृति, बाल विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा, छुआछूत, देवों व मजहब के नाम पर बलि, ईश्वर के स्थान पर पत्थर पूजा व मानव (गुरु) पूजा, अशिक्षा, परतंत्रता, भूत-प्रेत, जादू-टोना, गुरुडम, झूठे चमत्कार, ईश्वर व धर्म के नाम पर ठगी, फलित ज्योतिष, अवतारवाद आदि का। क्या लेखक इसे विकास मानता है? यदि इस नारे का लेखक द्वारा बताया गया अर्थ तोता, तो आर्यसमाज वे कार्य नहीं करता, जो स्वयं लेखक ने लिखे हैं - ''क्रान्तिकारी आन्दोलन, लड़के-लड़कियों में समान रूप से शिक्षा का प्रसार, स्त्रियों की स्थिति का सुधार और दलित जातियों के स्तर को ऊंचा उठाना आदि।''

वेदों की ओर लौटने का अर्थ है वेद को प्रमाण मानकर ज्ञान, कर्म, उपासना करना; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का स्वरूप जानना व आचरण करना; ईश्वर जीव व प्रकृति के सत्य स्वरूप को जानना व मानना; हिंसा रहित यज्ञ करना; आत्मिक, सामाजिक व राष्ट्र की उन्नति करना। क्या इनमें विकास का निषेध है? यह कैसी विडम्बना है कि वर्तमान भारत के नवजागरण में सबसे प्रमुख भूमिका निभाने वाले आर्य समाज के उपकारों को बड़े-बड़े राजनेताओं ने जानबूझ कर भुलाने की चेष्टा की है। पर ऋषि दयानन्द व उनके आर्यसमाज के कार्यों का प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग व प्रत्येक क्षेत्र पर देखा जा सकता है। कवि दामोदर-स्वरूप 'विद्रोही' के शब्दों में -

तू अगर न आता महाजाति का, हो जाता सहसा विनाश।

वेदो की धरती पर विदेश की, संस्कृति करती अट्टहास।।

तू अगर न बनता प्रलय वेग, निष्ठा स्वराज्य की आंधी का।

तो कभी नहीं पूरा हो, सपना भारत में गांधी का।।

तूने न अगर तोड़ी होती, हरिजन महिलाओं की तन्द्रा।

तो कभी न ऐसे हो पाते, जैसे हैं जगजीवन-इन्द्रा।।

(क्रमशः) ❑❑

पृष्ठ २ का शेष

तटस्थ रखा तथा युद्ध में भाग न लेने की प्रतिज्ञा की। वे अर्जुन के सारथी बनने के लिए अवश्य तैयार हुए। यही पाण्डवों की विजय का कारण बना।

यह कृष्ण की नीतिज्ञता ही थी कि सेनापति पद पर अभिषिक्त कौरव पक्ष के भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य एक एक कर पराजित हुए और विजय श्री ने पाण्डवों का वरण किया। अन्ततः वे स्वयं युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के पश्चात् क्षरिका चले गये और वहां के यादव शासकों का मार्गदर्शन किा। कृष्ण को नायक बता कर यदि भागवत, विष्णु पुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में उनके जीवन के कतिपय पक्षों का अतिरंजित चित्र प्रस्तुत किया गया है किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के महापुरूष दयानन्द सरस्वती ने उन्हें महान् धर्मात्मा बताया जिसने जन्म से मरण पर्यन्त कोई अधर्म का काम नहीं किया। बंगला में कृष्ण चरित्र के सुधी समीक्षक बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की सम्मति में कृष्ण के समान उदात्त चरित्र वाला कोई व्यक्ति धरती पर पैदा ही नहीं हुआ। वे एक साथ साम्राज्य संस्थापक, नीतिपटु, साथ ही महान दार्शनिक, योग के मर्मज्ञ तथा आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न महापुरूष थे।

❑❑

www.thearyasamaj.org

राजा का धर्म

(उत्तरा नेरुर्कर, बंग्लौर, मो. ०९८४५०५८३१०)

आजकल चारों ओर ऐसी अराजकता फैली हुई है और शासन के नाम पर ऐसी भयंकर लूट मची हुई है, कि हम भूल से गए हैं कि नेता हमारे आदरणीय होने चाहिए। देश की इस शोचनीय स्थिति को देखकर, मनुस्मृति में दिए राजा और व्यवस्था के आदर्श ऐसे लगते हैं, जैसे किसी स्वर्ग के लिए हों! वे विस्मृत न हो जाएं और भारतवर्ष में पुनः एक दिन ऐसा आए, कि हमारे नेता और शासक इन आदर्शों पर चलें, इसलिए इस लेख में मैं राजा के मुख्य धर्मों पर प्रकाश डाल रही हूं।

प्रथम तो मनु बताते हैं कि राजा की आवश्यकता ही क्यों है- क्या हम बिना राजा के अधिक सुखी हो सकते हैं? -

अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः।।

मनु० ७।३।।

अर्थात् बिना राजा के इस लोक में सब ओर अराजकता फैल जायेगी, जिसके कारण सब लोग सब ओर से भय को प्राप्त होंगे। (इस स्थिति का आज हम पर्याप्त मात्रा में अनुभव कर रहे हैं।) इन सबकी रक्षा के लिए परमात्मा ने राजा को बनाया। अर्थात् राजा का प्रमुख धर्म प्रजा की रक्षा करना है। क्या आज कोई भी नेता यह समझता है? ऐसा ही प्रतीत होता है कि वे अपनी सुरक्षा और समृद्धि को ही सर्वोपरि मानते हैं।

फिर मनु बताते हैं कि राजा को कैसा होना चाहिए-

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः।।

मनु० ७।४।।

ईश्वर ने जो राजा की सृष्टि की (उपर्युक्त श्लोक में), उसमें इन्द्र, अनिल=वायु, यम, अर्क=सूर्य, अग्नि, वरुण और वित्तेश=कुबेर के शाश्वत् अंश, अर्थात् उनके मुख्य, सार-रूप अंश होने चाहिए। अर्थात् राजा में इन दैवी शक्तियों के मुख्य गुण पाए जाने चाहिए। ये मुख्य गुण क्या हैं, यह मनु स्वयं आगे बताते हैं।

वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति।
तथाभिवर्षेत् स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन्।।

मनु० ९।३०४।।

जिस प्रकार इन्द्र या प्रकृति की वृष्टि-शक्ति, वर्ष में चार माह वर्षा करके सबको तृप्त कर देता है, वैसे ही राजा को अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि शान्ति-उन्नति की इच्छाओं को पूर्ण करना चाहिए। उसको अपनी प्रजा को ऐश्वर्य-युक्त करना चाहिए। यह उसका इन्द्र-व्रत कहलाता है।

अष्टौ मासान् यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः।
तथा हरेत् करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं ह तत्।।

मनु० ९।३०५।।

जिस प्रकार शेष आठ मास सूर्य, अपनी किरणों के द्वारा सब वस्तुओं में से जल हरता रहता है, उसी प्रकार राजा भी, बिना किसी को कष्ट पहुंचाए, नित्य कर की वसूली करे। यह उसका अर्कव्रत होता है। यहां एक विशेष बात यह देखनी चाहिए कि ७।४ और उपर्युक्त श्लोक में (और इनसे सम्बद्ध ९।३०३ में भी) सूर्य को जो 'अर्क' कहा गया है, वह 'कर' का उल्टा है। इसलिए इस विशेष शब्द का प्रयोग किया गया है।

प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः।।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम्।।

मनु० ९।३०६।।

जिस प्रकार वायु सब वस्तुओं में प्रविष्ट होती है, उसी प्रकार राजा को गुप्तचरों द्वारा अपनी राष्ट्र के हर भाग में प्रवेश करके, वहां की सूचना रखनी चाहिए।

www.thearyasamaj.org

यह उसका मारुत-व्रत कहलाता है। जो राहा अपनी प्रजा के अनकहे दुःख-दर्द नहीं जानेगा, और उनका समाधान नहीं करेगा, वह आगे जाकर स्वयं अपने पद से च्युत होगा।

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतं।

मनु० ९।३०७।।

जिस प्रकार यम, अर्थात् परमात्मा का नियन्त्रक स्वरूप, समय आने पर कर्मानुसार सब को प्रिय या अप्रिय कर्मफल देकर नियन्त्रित करता है, उसी प्रकार राजा को प्रजा को दण्ड और लाभ देकर नियन्त्रण में रखना चाहिए। यह उसका यम-व्रत होता है।

वरुणेन यथा पाशैर्बद्धः एवाभिदृश्यते।
तथा पापान् निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम्।।

मनु० ९।३०८।।

जिस प्रकार वरुण= पानी के भंवर में मनुष्य जाल में बंधा हुआ सा दीखता है, उसी प्रकार राजा को पापियों को कारागार के बन्धन में डालना चाहिए, जिससे अन्य प्रजा भय-रहित होकर रह सके। यह उसका वारुण-व्रत होता है।

परिपूर्ण यथा चन्द्र दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः।
तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चान्द्रवतिको नृपः।।

मनु० ९।३०९।।

जिस प्रकार पूरे चांद को देखकर मानव हर्ष करते हैं, वैसी ही प्रकृति राजा की होनी चाहिए। अर्थात् राजा की आर्थिक व नैयायिक व्यवस्था से सन्तुष्ट जन उसको देखकर आह्लादित होने चाहिए। वही राजा चान्द्रव्रतिक कहलाता है।

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात् पापकर्मसु।
दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतं।।

मनु० ९।३१०।।

जिस प्रकार अग्नि शाक, धातु, आदि के दोषों को जला देती है, उसी प्रकार राजा को चाहिए कि वह पापकर्मों में प्रतापी और तेजस्वी हो, अर्थात् स्वयं भयभीत न हो, अपितु पापी को भय दिलाए, और दुष्ट मन्त्री, अधिकारी तक को भी कठोर दण्ड दे। राजा के प्रतिनिधि ही यदि अत्याचार करेंगे, तो प्रजा में न्यायव्यवस्था स्थापित ही नहीं हो सकती। यह राजा का आग्नेय व्रत होता है।

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम्।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतं।।

मनु० ९।३११।।

जिस प्रकार पृथ्वी सब प्राणियों को, बिना भेदभाव के, समान भाव से धारण करती है, उसी प्रकार राजा को सारी प्रजा का पक्षपात रहित होकर पालन-पोषण करना चाहिए। यह उसका पार्थिव व्रत कहलाता है। इसी पृथ्वी को ऊपर दिए श्लोक (७/४) में वित्तेश कहा गया था, क्योंकि पृथ्वी से ही नव सम्पदा प्राप्त होती है।

एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः।
स्तेनान् राजा निगृह्णीयात् स्वराष्ट्रे पर एव च।।

मनु० ९।३१२।।

ऊपर दिए सारे व्रतों के द्वारा और अन्य उपायों के द्वारा भी, आलस-रहित होकर, राजा सर्वदा अपने राष्ट्र और दूसरे देशों से आए हुए घुसपैठी चोरों को अपने वश में रखे। किसी भी प्रकार की हानि से, हर सम्भव उपाय के द्वारा, प्रजा और राष्ट्र को राजा बचाए। इसी कारण से उसकी नियुक्ति होती है। यही उसका परम धर्म होता है।

आज जहां चारों ओर 'त्राहि त्राहि' का स्वर सुनाई पड़ रहा है, यदि भारतवर्ष को कोई ऐसा राजा, ऐसा प्रधान मन्त्री प्राप्त हो जाए, तो देश की परिश्रमी प्रजा देश को विश्व में कहां पहुंचा दे! मनु ने तो इतने प्राचीन काल में ही राजा के लिए इतने कठोर मापदण्ड दे दिए; क्या हममें से कोई भी इस कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता?

www.thearyasamaj.org

माँ कौशल्या ! तुझे प्रणाम

(दिनेश शास्त्री, कार्यालय व्यवस्थापक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट)

माँ! तू चली गयी है? विश्वास नहीं होता। नहीं मां तू ऐसा नहीं कर सकती। तू जानती है तेरे बिना हम कैसे अधूरे से रह जाएंगे।

क्या कहा मां! जाना ही पड़ता है। जो आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर। सभी चले गए, राम चले गए, कृष्ण चले गए, दयानन्द चले गए, श्रद्धानन्द चले गए और न जाने कौन-२ चले गए। किसी कवि ने बड़ा सटीक लिखा है -

माली आवत देख के कलियाँ करे विचार।
फूले-फूले चुन लिये, कल हमारी वार।।

आना-जाना लगा ही रहता है, लगा ही रहेगा और लगा ही रहना चाहिए। जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु भी अवश्यम्भावी है।

मां तू ठीक ही कहती है, ये महापुरुष तो आज भी जीवित हैं। करोड़ों-करोड़ों लोगों के हृदय में विराजमान हैं। बच्चा २ उनका यशोगान बड़ी श्रद्धा से कर रहा है और करता रहेगा। उसी तरह मां! तू भी हमारे हृदय में सदैव विराजमान रहेगी और हम तुझसे प्रेरणा लेते रहेंगे।

अरे पागल! क्या मां सीता चली गयी? नहीं न, फिर तू मेरे लिए इतना बेचैन क्यों हो रहा है? यदि तुझे या किसी को भी मेरे जीवन में जो अच्छा लगा हो, उसे ग्रहण करना, जिस मार्ग पर मैं चली, उस पर चलना। तुझे ध्यान है न, मैं ऋषि द्वारा प्रत्येक गृहस्थ के लिए निर्दिष्ट पञ्चमहायज्ञ प्रतिदिन पूरी श्रद्धा और तन्मयता के साथ करती थी।

हां मां! तू सच कहती है, तूने वेद भले ही न पढ़े हों, परन्तु तेरा जीवन वेदानुकूल था। मुझे नहीं लगता कि तूने ऋषि जीवन को पढ़ा होगा, परन्तु ऋषि तेरे हृदय में बसते थे और आर्यसमाज में तेरे प्राण बसते थे, तभी तो माँ आर्यसमाज नया बांस का कोई भी कार्यक्रम तेरे बिना सम्पन्न नहीं होता था। सच कहता हूं मां! तेरे बिना सूना २ सा लगता था और अब तो सदा २ के लिए सूना हो गया है। महिला आर्यसमाज, नया बांस, दिल्ली-६ की यशस्विनी प्रधाना ने इस असार संसार से सदा-२ के लिए विदा ले ली।

तूने कभी प्रवचन भी नहीं दिया, लेकिन तेरा जीवन ही एक प्रवचन था। तेरा आचरण, तेरा व्यवहार और तेरा बड़प्पन सिर चढ़कर बोलता था। मां अधिक क्या कहूं तू महान थी, महान, गुणों की खान थी। परिवार समाज की आन बान और शान थी।

मां तेरा आर्यसमाज परिवार भी तेरे विशाल हृदय की तरह विस्तृत है। एक बार दर्शन करने मात्र से तेरी सहृदयता उसे सदैव-सदैव के लिए अपना बना लेती थी।

यहां एक घटना देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा। आर्य जगत् के अद्भुत विद्वान स्व. श्री पं. विशुद्धानन्द मिश्र इस परिवार के कुल पुरोहित थे। वे आर्यसमाज नया बांस में कई २ दिन ठहरते थे। उनके भोजनादि की व्यवस्था माताजी आप स्वयं ही किया करती थीं। यह तो कोई विशेष बात नहीं है। विशेष बात यह है कि आप अपने कुल पुरोहित के साथ २ समाज के तत्कालीन सेवक को भी भोजन करना नहीं भूलती थीं।

शेष पृष्ठ २७ पर

www.thearyasamaj.org

श्राद्ध और तर्पण : महर्षि का दृष्टिकोण

(आचार्य डॉ. अजय आर्य)

प्रयोजन

श्रवण की पितृभक्ति जगत् में प्रसिद्ध है। अपने माता-पिता की इच्छापूर्ति के लिए श्रवण ने उन्हें अपने कन्धों पर बिठाकर अपने देश के दर्शनीय तीर्थों का दर्शन कराया था। मर्यादा पुरुषोत्तम जिन्हें भगवान के रूप में माना जाता है, माता-पिता के भक्त थे। अपने पिता के वचनों की रक्षाके लिए उन्होंने अपना राज-पाठ छोड़कर चौदह वर्षों का बनवास स्वीकार किया था।

प्रातकाल उठिकै रघुनाथा। मात-पिता गुरु नांवहि माथा।

आज स्थिति विपरीत छोटी सी वैचारिक भिन्नता के चलते माता-पिता का तिरस्कार ही नहीं अपितु, हत्या कर देने वाली क्रूर संताने भी राम के देश में हैं। मैंने कभी अपनी कविता में इस विषय को उठाते हुए लिखा था-

पितृवचन की रक्षा वन को चला था बेटा
वह पुत्र अब पिता को बनवास दे रहा है
हे राम! आज तुमको भारत बुला रहा है।।

भौतिकता की आंधी में हमारी नैतिकता, हमारे भावनात्मक मूल्य तितर बितर होते जो रहे हैं। पितृयज्ञ का प्रयोजन यही है कि माता-पिता को उनके गौरवपूर्ण स्थान से वंचित नही होना पड़े। 'यूस एन्ड थ्रो' उपयोग करो और फेंकों के सिद्धान्त ने प्रकृति, वातावरण तथाह मारे जीवन को विषाक्त करना शुरू कर दिया है। आज भले ही इस विष का स्वाद मन को भा रहा हो, पर इसका भयावह परिणाम जब सामने आएगा तब यह बीमारी लाईलाज हो चुकी होगी। स्लो पायजन (धीमा विष) इन्हीं कारणों से बहुत अधिक घटाका होता है क्योंकि व्यक्ति विष को विष नहीं मान पाता। मुझे कुंभ के दौरान पढ़ी गई एक घटना याद आती है। एक विदेश महिला (शायद ब्रिटिश) संन्यास ले रही थी। संतों और भारतीय परम्परा का वह बरसों से अध्ययन कर रही थी। कुछ पत्रकार उसका साक्षात्कार ले रहे थे। वो साक्षात्कार में भारत तथा भारतीयों की विशेषता को लेकर किसी ने प्रश्न पूछा था, वह महिला बोली। भारतीय बहुत सौभाग्यशाली और धनी है क्योंकि उनके पास माता पिता हैं।

हम आज जिनका अनुकरण कर रहे हैं वह अपने भोग विलास के संसाधनों से उकता गए हैं। उनका जीवन उस विष से विषाक्त हो गया है, जिसे उन्होंने सदियों पहले अपनाया था। भारत की संस्कृति विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति है। यहां वैयक्तिक और सार्वजनिक जीवन के बीच संतुलन बनाने का प्रयास किया गया है।

आप सबने यह घटना सुनी होगी। एक दम्पत्ति अपने माता पिता को वृद्धाश्रम भेजने की तैयारी कर रहे थे। उनका सब सामान बांध दिया गया था। पिता वृद्ध थे उनकी जुबान खामोश थी पर आंखों में सैकड़ों शिकायत थी। बोलना चाहते थे पर कुछ बोल नहीं पाये। दम्पत्ति ने अपने पुत्र को आवाज दी। निर्देश दिया कि दराज में राखी धोती दादाजी को भेंट कर दी जाये। वह पुत्र गया, अलमारी खोली धोती निकालकर उसके दो टुकड़े करने लगा। पिता ने पूछा, ये क्या कर रहे हो। बेटा बोला-धोती के दो भाग कर रहा हूँ। जब आप वृद्ध हो जाएंगे तो आपको भी वृद्धाश्रम भेजना पड़ेगा, मैं तब के लिए आधी धोती सुरक्षित रख रहा हूँ। पिता की आंखें खुल गई, उन्हें पता चल गया कि वे जो बोएंगे

www.thearyasamaj.org

वही काटेंगे। वह अपने पिता को वृद्धाश्रम भेजने की हिम्मत नहीं कर पाए। 'त्यक्तेन भुंजीथाः' का एक रहस्यार्थ यह भी है कि हम जैसा छोड़ते (करते) हैं वैसा ही हमें मिलता है इसलिए महाभारत काल में उपदेश दिया है

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।।

जो तुम खुद के लिए नहीं चाहते उसे किसी ओर के लिए मत करो। जैसा व्यवहार हम दूसरों से अपने लिए चाहते हैं वैसा ही व्यवहार हमें दूसरों के लिए करना चाहिए।

पितृयज्ञ, श्राद्ध और तर्पण

मन्वादि ऋषि-मुनियों ने पञ्च महायज्ञों को अवश्य ही करणीय बताया है। मनु के अनुसार इन यज्ञों का पालन अनिवार्य है।

यथाशक्ति न हापयेत्।

पंञ्चमहायज्ञ इस प्रकार है- ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ।

महर्षि दयानन्द यज्ञ को परिभाषित करते हुए लिखते हैं:-

"जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्यंत शिल्प व्यवहार और पदार्थ-विज्ञान है, जो कि जगत् के उपकार के लिये किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं।"

महर्षि दयानन्द के अनुसार श्राद्ध और तर्पण को पितृयज्ञ का अंग है। यहाँ हम महर्ष्हि के आलोक में इसे समझने का प्रयास करेंगे। मेरा एक वैयक्तिक दृष्टिकोण है कि हमारी (आर्यसमाजियों) की छवि साधारणतः नकारात्मक बनती जा रही है। जहाँ आर्यसमाज को लोग सिर्फ नाम से जानतें वहां विरोधियों द्वारा फैलाया जा रहा अफवाह सफल भी हो जाता है। हमें किसी भी कृत्या के खंडन की बजाये मंडान की शैली को अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए। जैसे अभी पौराणिक जगत में श्राद्ध की धूम मची हुई है श्राद्ध और तर्पण का क्रियात्मक सत्य स्वरूप क्या है? इस विषय को ऐसे प्रासंगिक समय में क्रियात्मक आयोजन के माध्यम से समाज के सामने रखा जाना चाहिए। मुझे ध्यान आता है कि ऐसा एक आयोजन गुरुकुल आश्रम सलाखिया में स्वामी रामानन्द जी महाराज की प्रेरणा से आयोजित किया गया था। इस आयोजन में उन्होंने श्राद्ध के बहाने आर्यसमाज के वयोवृद्ध कार्यकर्ताओं, अधिकारियों के साथ साथ स्थानीय वृद्धजनों का सम्मान किया था। ऐसे आयोजन आर्यसमाज के सिद्धांतों को क्रियात्मक पहचान दिलाते हैं और समाज को एक नई प्रेरणा भी मिलती है।

पितृयज्ञ का पंजमहायज्ञ में तीसरा स्थान है। पितृयज्ञ के दो भेद हैं- एक तर्पण और दूसरा श्राद्ध।

येन कर्मणा विदुषो देवान् ऋषीन् पितृश्च तर्पयन्ति सुखयन्ति तत् तर्पणम् तथा तेषां श्रद्धया सेवनं क्रियते तत् श्राद्धम्।

अपने सत्कर्मों (शुभकर्मों) से देवों, पितरों और ऋषियों को तृप्त करना तर्पण कहलाता है। उनका श्रद्धापूर्वक सेवना करना ही श्राद्ध कहलाता है।

मुख्यतः माता-पिता या अपने पितृजनों को जीवित स्थिति में ही तृप्त किया जा सकता है। मृतक श्राद्ध को ऋषियों ने अनुचित माना है। जो जीवित पितरों का तिरस्कार करता है उसका मृतक श्राद्ध उसके लिये कभी भी कल्याणकारी नहीं हो सकता। आज की विडम्बना देखिये-

जीवित पिता से दंगम दंगा, मरे पीछे पहुंचाए गंगा।।

माता-पिता को गंगा पहुँचाना ही संतान का कर्त्तव्य नहीं है। अपने वृद्ध माता-पिता के उपकारों को स्मरण

www.thearyasamaj.org

करके उनका आशीर्वाद लेना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। बिन सुश्रुषा के सेवा सफल नही होती इसीलिये सेवा और सुश्रुषा दोनों शब्दों का एक साथ प्रयोग किया जाता है। सेवा शब्द का अर्थ सभी जानते ळें सुश्रुषा का अर्थ है सुनने की इच्छा करना। आप किसी विद्वान् या किसी वृद्ध पितर की सम्मान करते हैं पर सुनने की इच्छा नही करते तो आपको यथोचित लाभ नहीं मिलेगा। पितरों तथा देवरूप विद्वानों के सद्विचारों को सुनने ही यथोचित लाभ मिलता है।

वेदमंत्र कहता है- **श्रद्धया विन्दते वसु।** श्रद्धा हमें बसे रहने की शक्ति और ऊर्जा देती है। बसने या बसाने का सामर्थ्य रखने के कारण ही धन को भी वसु के नाम से पुकारा गया है। परमात्मा को भी वसु कहा गया है। वसु वह धन है, जो हमें बसाता है। धन के पास उजाड़ने की भी ताकत है। जो धन अपने साथ व्यसन, मद और अहंकार लेकर आता है, वह धन व्यक्ति को उजाड़ देता है। आचार्य शुकनास ने राजपुत्र को जीवन की कड़वी सच्चाई से अवगत करते हुए कहा था- "जवानी, धन-सम्पत्ति, अधिकार (वर्चस्व) और अविवेक इनमें से एक ही इंसान को बरबार करने के लिए काफी है। राजकुमार! तुम्हारा उद्धार मुश्किल है क्योंकि तुम तो इन चारों से घिरे हुए हो।

हमारी श्रद्धा ही हमारे जीवन को नियंत्रित करती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने श्रद्धा को परिभाषित करते हुए लिखा है- श्रत् सत्यं दधाति इति श्रद्धा। जो सत्य को धारण कराये वही श्रद्धा है। आजकल श्रद्धा की जो व्याख्या की जा रही है उसक मुताबिक जो हमें सत्य को देखने न दे वह श्रद्धा है। श्रद्धा की इस विपरीत व्यवस्था ने ही आज श्रद्धा पर आधारित के अनुसार जो गुरु अपने शिष्य की प्रज्ञा या विवेक को जागृत करने की बजाय कुंठित करे उसेगुरु नहीं कहा जा सकता। उपनिषदों में इस स्थिति को **'अन्धेनेव नीयमाना यथान्धाः'** कहा गया है। यह स्थिति ऐसी है, जैसे एक अंधे के पीछे दूसरा चलता हो। अंततः दोनों ठोकर खाकर गिरते हैं।

श्राद्ध और तर्पण : उद्धार का मार्ग

श्राद्ध और तर्पण उद्धार का मार्ग हैं इनके सहारे मनुष्य अपने जीवन की जटिलताओं का समाधान कर सकता है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार पितृजनों के आशीर्वाद से ही गणेश जगद्वन्द्य तथा प्रथम पूज्य बने। माता-पिता का तिरस्कार करने अधोगामी होते। पितरों का आशीष हमें देवाजनों के आशीष का अधिकारी बनाता है। दैवीय अथवा ईश्वरीय शक्तियाँ भी इन्हीं की सहायक होती हैं। वेदों में ईश्वर को भी माता पिता के रूप में वर्णित किया गया है।

देव, ऋषि और पितर

तर्पण आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन हैं- देव, ऋषि और पितर। शतपथ के उल्लेख के अनुसार विद्वान् ही देव हैं। **विद्वांसो ही देवाः।**

कां. ३। अ.७। ब्रा. ६कं.१०

जो झूठ सेअलग होकर सत्य को प्राप्त होवें, वे देव जाति में गिने जाते हैं औ जो सत्य से अलग होके झूठ को प्राप्त हों, वे मनुष्य, असुर और राक्षस कहतें हैं।

जो सब विद्याओं को जानके सबको पढ़ाता है उसको उसको ऋषि कहते हैं।

पितर कौन हैं?

शास्त्रों में बारह विशेषणों के साथ पितरों की गणना की गई है। इन्हें बारह प्रकार का भी कहा जा सकता है-

१. सोमसदः	२. अग्निश्वात्ताः
३. बर्हिषदः	४. सोमपाः
५. हविर्भुजः	६. आज्यपाः

www.thearyasamaj.org

७. सुकालिनः ८. यमराजश्चेति

९. पित्तृपितामहप्रपितमहाः

१०. मातृपितृमहीप्रपितमह्यः

११. सगोत्राः १२. आचार्यदिसंबन्धिनः

सोमयज्ञ में निपुण शान्त गुण वाले सोमसदः अग्नि विद्या सिद्ध करने वाले अग्निश्वात्ताः परब्रह्म में स्थिर शम आदि गुणों में वर्तमान रहने वाले बर्हिषदः सोमलतादि उत्तम औषधियों का सेवन करने वाले सोमपाः तथा जो यज्ञ से अन्न जल आदि की शुद्धि करके खाने पीने वाले हैं उनको हर्विभुजः कहा गया है। स्निग्ध पदार्थ तथा विज्ञान की रक्षा करने वाले आज्यपा, सत्यविद्या के उपदेश में जिसका श्रेष्ठ समय व्यतीत होता है वे सुकालिनः, पक्षपात को छोड़कर न्याय करने वाले यमराज, पिता का पिता पितामह, पितामह का पिता प्रपितामह कहाता हैं।

पित्रादिकों के तुल्य पुरुषों की भी पित्रादिकों के तुल्य सेवा करनी चाहिए। पित्रादिकों के समान विद्यास्वभाववाली स्त्रियों की भी अत्यंत सेवा करनी चाहिए।

जो समीपवर्ती जाति के योग्य पुरुष हैं वे भी सेवा करने के योग्य हैं।

जो पूर्ण विद्या को पढ़ाने वाले श्वसुरादि सम्बन्धी तथा उनकी स्त्रियां हैं उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिए। इन विद्यमान सोमसदादि पितरों के सुख तथा तृप्ति के लिये प्रीतिपूर्वक जो सेवा सुश्रुषा आदि कार्य किया जाता है, उसे तर्पण कहा जाता है। श्रद्धापूर्वक उनका सेवा करना ही श्राद्ध कहा जाता है।

वसु रुद्र ओर आदित्य

मनुस्मृति के अनुसार वसु रुद्र और आदित्य हैं-

वसून् वदन्ति वै पितृन् रुद्रान्श्चैव पितामहान्।
प्रपितामहान्श्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी।।

मनु. अ. ३/श्लोक २८४

पितरों को वसु, पितामहों को रूद्र और प्रपितामहों को आदित्य कहा जाता है। जो सोमसदादि पितर विद्यमान अर्थात् जीवते हों, उनको प्रीति से सेवादि से तृप्त करना तर्पण और श्रद्धा से अत्यंत प्रीतिपूर्वक जो सेवा करना है, सेा श्राद्ध कहाता है।

पंचायतन पूजा

माता, पिता, आचार्य, अतिथि और परमेश्वर का जो यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करना है, उसको पंचायतन पूजा कहते हैं।

देवपूजा क्या है?

विद्वानों, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा ओर धर्मात्माजन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना देवपूजा कहती है। **स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश**

श्राद्ध कैसे करें?

जीवित माता-पिता अथवा अपने सम्मानित बुजुर्गों का आदर सत्कार करके उन्हें तृप्त करना ही श्राद्ध और तर्पण है। जीवित माता-पिता की सेवा करें। बुजुर्गों का आदर सत्कार तथा अपने सामर्थ्य के अनुसर उन्हें तृप्त करें, उनका सहयोग करें। श्राद्ध का आयोजन करना ही चाहें तो सर्वप्रथम माता-पिता तथा अपने अन्य पितृजनों को आदरपूर्वक आसन देकर बिठाएं। श्रद्धापूर्वक उनका चरण स्पर्श करके आशीष लें। शुद्ध पवित्र होकर घर में यज्ञ (हवन) तथा सत्संग का आयोजन करें। घर में किसी वैदिक विद्वान के मुख से वेदकथा, उपदेश का श्रवण करें। घर में उनकी ही रूचि का भोजन बनायें पितरों को वस्त्रादि देकर सम्मानिक करें अपनी संतति (पुत्र-पुत्री) को भी इस आयोजन में सम्मिलित करें, जिससे उन्हें भी अच्छे संस्कार मिले। क्योंकि -

पूत सपूत क्यों धन संचय।
पूत कपूत क्यों धन संचय।

❑❑

www.thearyasamaj.org

मानव की वरणीय संस्कृति

(उमाकान्त उपाध्याय, कोलकाता, मो. : ०९४३२३०१६०२)

आजकल "संस्कृति" शब्द का बड़ा भ्रामक प्रयोग हो रहा है, यह प्रयोग भ्रष्टता कब से चली, कहाँ से चली, यह तो समझ में नहीं आया, किन्तु इस समय "सांस्कृतिक कार्यक्रम" और "cultural program" से यह समझा जाता है कि यहाँ संगीत, वाद्य, नाटक, नृत्य, कविता पाठ आदि का आयोजन हो रहा है। वस्तुतः संस्कृति मानव समाज के उतथान का प्राण और मानवता के श्रेष्ठ गुणों का आत्मा है। मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक चरित्र का श्रेष्ठतम स्वरूप मानव संस्कृति है। परस्पर प्रेम, दया, करुणा, सहानुभूति आदि मानव संस्कृति के अभिन्न अंग है।

सभ्यता और संस्कृति, दो शब्दों का युग्म, जोड़ा प्रायः बोलचाल में प्रयोग में आता है। सभ्यता समाज का बाह्य रूप, शरीर के समान है, वस्त्र, पोशाक, भेष, घर, बागान, मकान, मार्ग- साड़ी, गाड़ी, बाड़ी, सभ्यता के अंग हैं और व्यक्ति और समाज की आंतरिक विशेषताए संस्कृति हैं। इसीलिए सभ्यता समाज का बाह्य दर्शन, वाहिनी स्वरूप शरीर जैसा है और संस्कृति चरित्र के आंतरिक गुण, प्रेम स्नेह, दया, करुणा, द्वेष, हीनता, काम, क्रोध लोभ आदि से निवृत्ति "संस्कृति" के अंग हैं।

यूरोप, पश्चिमी देशों की वर्तमान संस्कृति का आधार डार्विन का विकासवाद है। विकासवाद का मूल आधार है।- "योग्यतम की जीत" (survival of the fittest)। अर्थात् जिसकी लाठी उसकी भैंस, बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, मनुष्यों का भी बलवान समुदाय निर्बल समुदायों पर अधिकार करके उनका शोषण करता है। साम्यवादी संस्कृति आधार है- वर्ग-संघर्ष- वर्गों का आपस में लड़ना और बलवान का जीतना। ये सब पशु संस्कृति है। इसका प्रचालन मनुष्य समाज को पशु बना देता है। इस समय तो भूमंडलीकरण और बहु-राष्ट्रीय कंपनियों की नीति उपभोक्तावाद (consumerism) को पशुओं से बदतर बनाकर उपभोग को बढ़ाना हो गया है। उपभोक्ता मरे या जिये, लाल मांस, शराब, अंडे आदि के उपभोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। यह मानवता के नाम पर कलंक है।

इन सबसे पृथक भारतीय संस्कृति का एक वरेण्य स्वरूप वेद में मिलता है-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेशम् कृणोमि वः;
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।

- अथर्व. ३/३०/१।

वेद की वाणी में परमेश्वर ने मानव को उपदेश दिया है कि हम (परमेश्वर) तुम्हें सहृदय, सुख-दुःख में परस्पर सहानुभूति, सौमनस्य वाला (सुन्दर मन वाला) द्वेष रहित बना रहे हैं, ऐ मानव! तुम एक दूसरे को इतना प्यार करो, ऐसे प्यार करो जैसे गाय अपने तुरंत उत्पन्न हुए बच्चे को प्यार करती है। गाय का अपने बच्चे को प्यार करना, सो भी तुरंत उत्पन्न हुए बच्चे को प्यार करना, संसार के निश्छल, निःस्वार्थ प्रेम का श्रेष्ठतम उदाहरण है। गाय और बछड़े का यही प्रेम-पूर्ण व्यवहार मानव संस्कृति का, मानव समाज की संस्कृति का आधार है।

मनुष्य समाज में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता, न कोई ज्येष्ठ, न कोई कनिष्ठ, सभी अपने सौभाग्य की वृद्धि करने के लिए भाई-भाइयों की तरह मिलकर प्रयत्नशील हों, वेद में कहा गया है- "अज्येष्ठासौ अकनिष्ठासः ऐते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।" ऋग्वेद-५/६०/५। मनुष्य समाज में तीन प्रकार का अभाव

www.thearyasamaj.org

देखा था (१) ज्ञान का अभाव, इसे जो दूर करने का व्रत लें वे ब्राह्मण ब्रह्म - ज्ञान। (२) न्याय का अभाव, इसे जो दूर करे वो क्षत्रिय (क्षत्- घाव, हानि)। (३) आलम्बन पदर्थो का अभाव, भोजन, वस्त्र, आवास् आदि। इन्हें समाज के लिये उत्पन्न करे तो वैश्य और (४) इन तीनों वर्गो की श्रम से सहायता करे तो वह शूद्र- आज की भाषा में चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी। भारतीय संस्कृति में मानवता के नाते सभी बराबर के मनुष्य हैं।

परमेश्वर ने मानव जीवन को उत्थान, समृद्धि, सम्पन्नता के लिये बनाया है। सृष्टा अपनी सृष्टि को विपन्न नहीं देखना चाहता। परमेश्वर वेद में आश्वासन देते हैं- "उद्यानम् ते नावयानं, जीवातुं ते दक्षतातुं कृणोमि" - हे मानव, तुम्हारा जीवन उन्नति के लिए है और तुम्हारे जीवन को दक्षता से संपन्न बना रहा हूँ- अवनति, विपन्नता मानव समाज की नियति नहीं है।

ऋषि कहते हैं- "भोगापवर्गार्थं दृश्यं"- यह संसार परमेश्वर का दृश्य-काव्य है, और वेद श्रृव्य काव्य हैं। परमेश्वर ने इस संसार को भोगार्थ तथा अपवर्गार्थ (मोक्ष) बनाया है, बल्कि यों कहना चाहिए कि परमेश्वर ने भोग के द्वारा मोक्ष की साधना के लिए इस संसार को बनाया है। "साधन धाम मोक्ष कर द्वारा"। इस संसार का कैसे भोग किया जाये यह भी वैदिक संस्कृति बताती है- "ईशा वास्यमिदं सर्वं, यत्किञ्च जगत्यां जगत्; तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्"- यजु. ४०/१। अर्थात् इस चलायमान संसार में जितने भी पदार्थ हैं, सबमें परमेश्वर का निवास है (वस-निवासे), सब परमेश्वर की छत्र छाया में हैं। (वसु-अच्छादने) भाव यह है कि संसार में सभी पदार्थ परमेश्वर की छाया में है और परमेश्वर ने कृपा पूर्वक प्राणियों को भोग करने लिए दे दिया है। इस संसार का कैसे उपभोग किया जाये यह भी अपनी संस्कृति बताती है। कहा है- "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः"- इसलिए त्यागपूर्वक भोग करो। त्यागपूर्वक भोग में केवल उपभोग के द्वारा लाभ लेने की बात है, संचय करना स्वत्व जताना, मालिक बनना आदि नहीं है, त्यागपूर्वक भोग का एक सुन्दर उदाहरण है- रेलगाड़ी की यात्रा, रेलगाड़ी सुन्दर है, डिब्बा भी सुन्दर है, साथी, सहयात्री, सभी सुन्दर भले हैं, किन्तु गंतव्य स्टेशन पर सबका त्याग करके उतर जाना त्यागपूर्वक भोग है। न गाड़ी अपनी है, न डिब्बा अपना है और न तो बाहर के सुन्दर दृश्य अपने हैं। सबका त्याग ही अभीष्ट है- "किसकी रेलगाड़ी और कौन रेलगाड़ी का"। "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः"। यह भी आशय है कि 'तेन परमेश्वरेण त्यक्तेन प्रसादरूपेण प्रयक्तेन भुञ्जीथाः' अर्थात् संसार के भोगों को परमेश्वर का प्रसाद मानकर भोग करें। जैसे प्रसाद में कोई आसक्ति या लोभ-लालच नहीं होात, उसी प्रकार संसार पदार्थों स्वत्व, आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। संसार में स्वत्व, ममत्व, आसक्ति, अधिकार, मालिकाना की भावना ही अशांति, वैर और विपत्ति का कारण है। श्री दिनकर जी ने ठीक ही कहा है- छीन-छीन जलथल की थाती, संस्कृति ने निज रूप समाया; विस्मय है, तो भी न शांति का दर्शन एक पलक को पाया।" संचय, लोभ, परिग्रह की भावना ही मनुष्य को मनुष्य से देश को देश से, राष्ट्र को राष्ट्र से अलग करती है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अधिकार करने के लिए अस्त्रों-शस्त्रों का संग्रह करता है और संसार में विभिन्न देशों में युद्ध होते हैं विश्व युद्ध भी होते हैं।

भारतीय संस्कृति का उपदेश है- "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम; मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।" सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें। यह मेरा है, यह मेरा नहीं है। दूसरे का है, यह स्वार्थी क्षुद्र दृष्टि है। "उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्"। उदार चरित्र पुरुषों के लिए सम्पूर्ण संसार एक कुटुंब हे। "तत्र विश्वं भवत्येकनीडं"- सारा संसार एक परिवार है, प्राणीमात्र परमेश्वर की संतान है और परमेश्वर सबका पिता है, पालक, रक्षक है।

❑❑

www.thearyasamaj.org

वर्तमान युग में ईश्वरीय ज्ञान-वेद की उपयोगिता

(स्वामी वेदानन्द सरस्वती, उत्तरकाशी)

ओउम् योभूतं च भव्यञ्च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलम् तस्मैजेष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

वर्तमान काल में उपलब्ध समस्त आर्ष और अनार्ष वाङ्मय का सार केवल दो शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

१. ज्ञान तथा २. कर्म

कर्म की अपेक्षा सदा ज्ञान ही प्रधान होता है।

ज्ञान के दो रूप होते हैं :- १. स्वाभाविक और २. नैमित्तिक

स्वाभाविक ज्ञान सभी प्राणधारियों में पाया जाता है, किन्तु नैमित्तिक ज्ञान केवल मनुष्य को ही प्राप्त होता है। मनुष्य के ज्ञान में निमित्त के साहचर्य से वृद्धि व ह्रास की सम्भावनाएं सदैव बनी रहती हैं। उत्तम निमित्त के साहचर्य से ज्ञान में उत्कृष्टता आती है। निमित्त की निकृष्टता से ज्ञान भी निकृष्टता को प्राप्त हो जाता है। प्रश्न होता है कि उत्तम निमित्त क्या क्या हो सकते ळैं, जिससे ज्ञान में उत्कृष्टता आती है?

इस प्रश्न का उत्तर हमें (भागवत) पुराण में प्राप्त होात है-

आगमऽपः प्रजाः देशः कालः कर्मश्च जन्म य।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कार दर्शते गुण हैतवः।।
११/१३/४।।

अर्थात्- सद्बुद्धि या उत्तम ज्ञान प्राप्ति के दश निमित्त कारण होते हैं। सर्वप्रथम पाठ्यक्रम का पुस्तक वेद है, दूसरे शुद्ध पवित्र जल से स्नान, आचमनादि, तीसरे उत्तम आचार्यजनों की शिक्षा, चौथे शान्त एकान्त देश में विद्याध्ययन, पांचवें ब्रह्मचर्य अवस्था में विद्याध्ययन से दूसरा तथा यज्ञादि सत्कर्मों से तृतीय जन्म की प्राप्ति, आठवें परमेश्वर का ध्यान, नवें गायत्री आदि मन्त्रें का मप करना, दसवां गर्भाधान से लेकर सनस दीक्षा पर्यन्त सभी उत्तम संस्कारों से शरीर, मन व आत्मा को पवित्र बनाना। ये उत्तम ज्ञान प्राप्ति के निमित्त कारण हैं।

उत्तम ज्ञान के यहाँ दस हेतुओं में सबसे प्रमुख वेदाध्ययन को बतलाया है। दूसरे हेतु उसके सहयोगी है।

किसी व्यक्ति की महानता का परिचय उसके महान कृत्यों से होता है। व्यक्ति के कर्म उस व्यक्ति के ज्ञान से जुड़े हाते हैं व्यक्ति का ज्ञान व्यक्ति के पाठ्यक्रम से उसके भाव और भाषा से प्रभावित होता है। वर्णों से, शब्दों से, भावों से समृद्ध भाषा ही ज्ञान की समृद्धि प्रदान करती है। संस्कृत भाषा विश्व की समृद्धतम भाषा है। वेद इसी भाषा में लिखे गये हैं। यह देव भाषा है। देव भाषा की अध्येता भी देवता बन जाता है।

संस्कृत को हटाकर हमारी सरकार ने म्लेच्छ भाषा का प्रचार करके मनुष्यों को दानव ही बनाया है। चोरी, जारी, हिंसा, छल, कपट, दुराचार, भ्रष्टाचार आदि कुकृत्यों का आज समाज में जन्ग नृत्य हो रहा है। और ये बीमारियां ला इलाज बीमारियां बन गई हैं। इन सब बीमारियों का एक अचूक इलाज गुरुकुल शिक्षा प्रणाली द्वारा वेद का अध्ययन-अध्यापन है। वेद की शिक्षा से भारत पुनः अपना प्राचीन गौरव प्राप्त कर विश्व गुरु बन सकता है। दूषित शिक्षा प्रणाली सब पापों की जननी है। पापों की परिहार वैदिक शिक्षा के बिना सम्भव नहीं है।

www.thearyasamaj.org

वेद क्या है?

सृष्टि रचयिता ने सृष्टि का सर्जन करके मानव के अन्तः करण में ज्ञान भी पैद किया। उस ज्ञान का अग्नि आदि ऋषियों ने अवसर ऋषियों को उपदेश किया। वही ज्ञान परम्परा से हमें चार पुस्तकों के रूप में उपलब्ध होता है। जिसके नाम क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद है। वेद शब्द का अर्थ ही स्वयं में ज्ञान है। सर्वज्ञ परमेश्वरीय ज्ञान होने से वेद ज्ञान विशुद्धतम ज्ञान है। ज्ञानहीन मनुष्य पशुतुल्य है।

जब तक समाज में मूर्ख लोग रहेंगे या समाज में मूर्खों की बहुतायत होगी, तब तक उनके ऊपर धूर्तों का शासन बना रहेगा। यदि हम चाहते हैं- मा नः स्तेन ईषतः। अर्थात् हमारे ऊपर धूर्त, चोर लुटेरों का शासन न हो तो हमें अपने समाज को वेद की शिक्षा से सुशिक्षित करना होगा।

यद् राष्ट्रं शूद्र भूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तं अद्रिजम्।
विनष्यति आशु तत्कृतस्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम्।।

अर्थात् जिस राष्ट्र में अशिक्षित, मूर्ख नास्तिकों की बहुतायत होती है, वह राष्ट्र शीघ्र ही दुर्भिक्ष,? व्याधि आदि उपद्रवों से पीड़ित होकर विनाश को प्राप्त हो जाता है। वेद की शिक्षा इन्सान को सच्चा इन्सान बनाती है।

ज्ञान चेतन का धर्म है। आत्मा और परमात्मा दोनों ही चेतन है। आत्मा अणु प्रमाणु, एक देशी, अल्पसामर्थ्य और अल्पज्ञ हैं; किन्तु परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। परमात्मा अनादि और अनन्त है, अतः उसका ज्ञान भी अनादि और अनन्त है। परमात्मा का ज्ञान नित्य और पूर्ण है। वेद ज्ञान किन्हीं ऋषि मुनियों की कृति नहीं है। ज्ञान की पूर्णता की प्राप्ति के लिए उसके आदि श्रोत परमेश्वर से जुड़ना अनिवार्य है। पूर्ण ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-

१. पदार्थ सापेक्ष ज्ञान और २. आत्मा सापेक्ष ज्ञान

इन्हें वैदिक शब्दों में बोध और प्रतिबोध कहा गया है।

ऋषी बोध प्रतिबोधौ च दिवानक्तं च जागृवी।
बोध प्रतिबोध रखने वाली जीवात्मा ही ऋषि कहलाती है।।

आत्मज्ञान की उपेक्षा करके पदार्थ विद्या के लिये प्रयत्न मानव समाज को महान विनाश की ओर ले जाते हैं जिस व्यक्ति को स्वयं की सुध न हो, वह मूर्छित कहलात ाहै। मूर्छित अवस्था में किए गये कर्म व्यक्ति व समाज के लिए कभी सुखदायी नहीं हो सकते। सोये हुवे व्यक्ति को जेसे अपनी निद्रा का ज्ञान नहीं होता वैसे ही मूर्छित व्यक्ति को भी अपनी मूर्छा का ज्ञान नहीं होता। होश में अपने पर ही उसे अपनी मूर्छा का ज्ञान होता है कि मैं अज्ञान में था। क्रोधी व्यक्ति गाली देता है क्रोध शान्त होने पर वह माफी मांगता है। कामी व्यक्ति दुराचार में प्रवृत्त होकर पीछे पश्चाताप करता है। चोर चोरी करके, हिंसक हिंसा करके, भ्रष्टाचारी भ्रष्टाचार करकेपीछे से होश आने पर आत्मग्लानी से भर जाते हैं। यदि होश पूर्व कर्म किये जाये तो आत्मग्लानी की आवश्यकता ही नहीं। होश मे जीवन जीने वाले व्यक्ति को जीवन में पश्चाताप की घड़ियाँ नहीं आती। यदि व्यक्ति के जीवन में पश्चाताप के अवसर आते हैं या व्यक्ति तनावपूर्ण जीवन जीता है तो निश्चित है कि वह व्यक्ति मूर्छित या अर्धमूर्छित है। मूर्छित या अर्धमूर्छित व्यक्ति के कर्म ही तनाव का कारण बनते हैं। धर्म पूर्वक जीवन जीने वाला व्यक्ति आनन्द से भर जाता है। लेकिन धर्म का ज्ञान वेद विद्या के बिना नहीं हो सकता। मूर्छित व्यक्ति कभी धार्मिक नहीं हो सकता।

www.thearyasamaj.org

दस प्रकार के व्यक्तियों को धर्म का ज्ञान नहीं होता।

कामी क्रोधिस्तथा लुब्धः भीतः श्रान्तः बुभुक्षितः।
मत्तः प्रमतः, उन्मत्तः त्वरमाणश्च सर्वदा।।
दश धर्म न जानन्ति तस्मादेते त्यजेत् सदा।।

अर्थात् - कामी, क्रोधी, लोभी, भयभीत, थकाहुवा श्रमिक, भूखा, शराबी, प्रमादी, उन्मादी और जल्दबाजी के स्वभाव वाले व्यक्ति को धर्म का ज्ञान नहीं होता। बुद्धिमान व्यक्ति को इनका संग नहीं करना चाहिये। दूसरे शब्दों में कहें तो ये दस मूर्छित व्यक्ति के ही लक्षण हैं।

मूर्छित व्यक्ति का प्रेम भी बेहोशी मे होता है और उसकी दुश्मनी भी बेहोशी में होती है। ऐसा बेहोश आदमी जीवन जीता नहीं। उसका जीवन बस नदी के पानी की तरह बह रहा है।

मूर्छित व्यक्ति कहना कुछ चाहता है, कह कुछ जाता है। करना कुछ और चाहता है, हो कुछ और ही जाता है। बनना कुछ चाहता है, बन कुछ और जाता है। सामान्यता तो मूर्छित व्यक्ति को यह ही पता नही होता कि वह क्या बनना चाहता है। एक धूमिल सी इच्छा होती है वह भी साफ नहीं होती। इसलिये वह सोचता कुछ और है, हो कुछ जाता है।

मरते समय व्यक्ति को लगता है कि जिन्दगी बेकार गई। वैसे तब भी उसे साफ नजर नहीं आता कि तू क्या चाहता था। किन्तु यह जरूर अनुभव होता है कि कुछ खो गया है। यह Some Thing is Missing की अनुभूति व्यक्ति को परेशानी पैदा करती है। जिस व्यक्ति को अपनी मूर्छा की ही पहचान नहीं, उसकी अनुभूति यदि नहीं, तो उसकी मूर्छा जल्दी से टूट भी नहीं सकती। अंग्रेजी की एक कहावत है :-

One Who knows not and knows not that the Knows not he is a Fool. sum him.

अर्थात्-जिस व्यक्ति को अपने अज्ञान का आभास नहीं है वह प्रथम श्रेणी का मूर्ख है। ऐसे व्यक्ति से दूर ही रहना चाहिये। क्योंकि ज्ञान भी उसी व्यक्ति को दिया जा सकता है जो ज्ञान का जिज्ञासु हो।

वेद का ज्ञान व्यक्ति को गर्भाधान से ही संस्कारित करना आरम्भ कर देता है। यहाँ बीज और क्षेत्र की उत्कृष्टता पर आरम्भ से ही ध्यान दिया जाता है। तभी धरती पर दैवी आत्मा जन्म लेती है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचार्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, त्याग, ध्यान, उपासना, करूणा, दया, मैत्री, दान, परोपकार आदि-आदि ये सब ज्ञान के ही उपलक्षण हैं। तपस्वी, योगी, ऋषि मुनियों के सत्य, अहिंसा, आदि सद्गुणों पर जब सूक्ष्म विचार किया जाता है, तो किसी भी गुण की वरीयता सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर के सामर्थ्य के कारण ही देखी जाती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि-आदि गुणों की परमेश्वर में पराकाष्ठा है। सब गुणों के मूल में वह परमेश्वर विराजमान हो रहा है। वह सब गुणों की खान है। उसका ज्ञान ही अहिंसा, सत्य आदि-आदि उपलक्षणों के रूप में प्रकट होता है।

जिस व्यक्ति के जीवन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, तप, त्याग, दया, दान आदि गुण दृष्टिगोचर होते हैं, वह इन गुणों को लेकर अपना व्यवहारिक जीवन जीता हो, तो निश्चय से कहा जा सकता है कि वहाँ ज्ञान का प्रकाश है। क्योंकि व्यक्ति अज्ञान के कारण ही हिंसा करता है, असत्य बोलता है, पर धर हरण करता है, व्यभिचार करता है।

सब के सब दुर्गुण अज्ञान की भूमि में पैदा होते हैं। जीवन में ज्ञान का अवतरण होते ही सभी दुर्गुण ऐसे भाग जाते हैं, जैसे सूर्योदय होने पर निशाचर छिप जाते

www.thearyasamaj.org

हैं। कहीं नजर नहीं आते। काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणों से आक्रान्त व्यक्ति स्थित प्रज्ञ नहीं हो सकता। उसकी वृत्तियाँ प्रतिक्षण नाना प्रकार के विषयों में भटकती रहती हैं। वह तनावग्रस्त जीवन जीता है। ऐसा व्यक्ति कभी आत्मनिष्ठा नहीं हो सकता। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि वृतों को पालन करना परमेश्वरीय ज्ञान का ही अनुसरण है। उस ज्ञान स्वरूप की शरण में जाकर चित्त भूमि के सब कल्मष कषाय धुल जाते हैं। चित्तवृतियाँ शान्त होकर व्यक्ति निज आत्मस्वरूप में स्थित होकर कैवल्य पद का सुख लाभ प्राप्त करता है।

काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणों की वृत्तियाँ सगर्भ और सविषय होती है। हम किसी व्यक्ति के प्रति कामुक हैं। किसके प्रति क्रुद्ध हैं। किस वस्तु पर लुब्ध है। आदि-आदि का निश्चय करके ही तदाकर हुवे बिना इन दुर्गुणों की स्थिति नहीं बन सकती। इसके विपरीत निष्कामता, निर्लोभता, अक्रोध आदि की वृत्तियाँ यह अपेक्षा नहीं रखती कि हम किस के प्रति निष्काम हैं या किस के प्रति निर्लोभ हैं। विषयहीन हुई ये निवृत्ति में यह सहायक बनती हैं। ध्यान, उपासना आदि भी अनेक विषयक वृत्तियों को व्यावृत करने के लिये ही होते हैं, क्योंकि एक वस्तु में एकतानता ही उनका स्वरूप होता है।

जब व्यक्ति का ज्ञान उस परब्रह्म के ज्ञान के अनुरूप होकर लोकहित के कार्यों की ओर बहने लगता है तब ही जीवन और जगत का यथार्थ में कल्याण होता है।

वेदांखिलो धर्म मूलम्।

अर्थात्-अखिल धर्म का मूल वेद ही है। वेद के ज्ञान से व्यक्ति पूण्रतया धार्मिक बन जाता है। और धार्मिक व्यक्ति पूर्णतया आनन्द से भर जाते हैं।

अतः अन्त में उपनिषद् के शब्दों में-

यो ब्रह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

तं ह देवात्मबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षु वैं शरणमहं प्रपद्ये।। श्वेता.

जो सफल ज्ञान के धारण करने वाला परमेश्वर इस जगत में वेदों का प्रकाश करता है, उस आत्मबुद्धि प्रकाशक देव की ही मैं मुमुक्षु शरण ग्रहण करता हूँ। ❑❑

पृष्ठ १७ का शेष

फिर मृत्यु क्या है? कोई हौवा है क्या? अरे! यह ऐसे ही है जैसे हम पुराने फटे वस्त्र उतार कर नये धारण कर लेते हैं, ठीक उसी प्रकार जीव अपने इस शरीर रूपी वस्त्र को पहनने योग्य न रहने पर त्याग देता है और अपने कर्मानुसार दूसरा नया सुन्दर शरीर धारण कर लेता है।

कई सौ पुस्तकों के लेखक आदरणीय राजेन्द जिज्ञासु जी ने मृत्यु की विवेचना करते हुए अपने अमूल्य ग्रन्थ 'मेहता जैमिनी' के पृष्ठ १८३ पर लिखा है "हम आवागमन के सिद्धान्त को मानते हैं। यह सिद्धान्त जड़-चेतन दोनों पर लागू होता है। मिट्टी से घड़ा व घड़े से मिट्टी बनती है। जल से बर्फ व बर्फ से जल बनता है। इसी प्रकार जीव अपने कर्म भोगानुसार भिन्न-२ योनियों को प्राप्त करता है। देह में संयोग का नाम जन्म और वियोग का नाम मृत्यु है। जीव एक चोले को छोड़ कर दूसरे चोले को धारण करके कहीं अन्यत्र बस जाता है। इसी का नाम आवागमन है। किसी की मृत्यु पर 'चल बसा' शब्द का प्रयोग इसी दार्शनिक सत्य की सरलतम व्याख्या है।

मां! तुझे विनम्रता और कृतज्ञता से श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए नमन।

www.thearyasamaj.org

आर./आर. नं० १६३३०/६७ अक्तूबर २०१३
Post in Delhi R.M.S
०१-०७/१०/२०१३

अक्तूबर 2013

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2012-14
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण दो माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

– दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु. प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु. प्रचारार्थ 50 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.	प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बांवली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में......................................
ग्राम......................................
डा0......................................
जिला......................................

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिण्टर्स, १५३४, गली कासिमजान, बल्लीमारान, दिल्ली-६